भक्ति

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

सम्पादक—
स्वामी कृष्णानन्द, ब्रह्मचारी भूमानन्द
पौष १९८५

वार्षिक चन्दा २)

[इस अङ्क का मूल्य ।)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ३ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, पौष पूर्णिमा सं० १९८५। | अङ्क ४

भगवद्वचन।

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥१॥

हे मनुष्यो! सविता देव हमारी सब क्रियाओं के करने वाला है, वह हमें उत्तम कर्मों के लिये संयुक्त करे, अन्न और रस के लिये ज्ञान के भरे हुये श्रेष्ठ गुणों के देने वाले आपका आश्रय करते हैं। हम ऐसे ही होकर उन्नति को प्राप्त हों। हे भगवन्! ऐश्वर्य के लिये जिनके बहुत सन्तान हैं तथा व्याधी और अयक्ष्मादि रोग नहीं है, जो हिंसा करने योग्य नहीं है उनको सदैव नियत करें। हे भगवन्! पापी चोर डाकू मत उत्पन्न हों, परमेश्वर परायण मनुष्यों के पशुओं की रक्षा करो। इस भूमि पर बहुत से सुख के पदार्थ हों।

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोसि विश्वधा असि । परमेण धाम्नादृᳫं हस्व माह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत ॥ २ ॥

हे मनुष्य ! तू यज्ञ शुद्धि का हेतु है । जो द्यौ में है, जो पृथिवी में है, जो वायु को शुद्ध करने वाला है, जो संसार का धारण करने वाला है, जो उत्तम स्थान से सुख का बढ़ाने वाला है, उस यज्ञ का त्याग न कर तथा तेरा यजमान भी उसको न त्यागे ॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारं । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥ ३ ॥

जो यज्ञ सहस्रों लोकों का धारण और शुद्ध करने वाला है, जो यज्ञ अनेक ब्रह्माण्डों को शुद्ध करने और सुख देने वाला है, उस यज्ञ को स्वयं प्रकाश स्वरूप परमेश्वर पवित्र करे । हे परमेश्वर ! वेद के विज्ञान और बहुत विद्या धारण करने वाले वेद और पवित्र करने वाले यज्ञ से हमको पवित्र कीजिये ! हे मनुष्य तू वेद की किस किस वाणी को जानना चाहता है ॥ ३ ॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः । इन्द्रस्य त्वा भागᳫं सोमेना तनच्मि विष्णो हव्यᳫं रक्ष ॥ ४ ॥

हे विष्णो ! वह पूर्ण आयु की देने वाली जिससे सम्पूर्ण क्रियाकाण्ड सिद्ध होता है वह सब जगत् को धारण करने वाली है । परमेश्वर के सेवा करने योग्य यज्ञ को सोम से अपने हृदय में दृढ़ करता हूं । हे परमेश्वर ! विज्ञान की निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५ ॥

हे व्रतपते अग्ने ! मैं झूठ से अलग सत्यव्रत की प्राप्ति की इच्छा करता हूं । मेरे लिये उसे सिद्ध कीजिये, मैं इस व्रत को करने में समर्थ होऊं, इस यज्ञ का आचरण करूंगा ॥५ ॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

कौन तुझको सुकर्म करने की आज्ञा देता है ? वह जगदीश्वर तुझको आज्ञा देता है । किस लिये मुझे और तुझे आज्ञा देता है ? सत्यव्रत के आचरण के लिये आज्ञा देता है । वह श्रेष्ठ कर्म के लिये नियुक्त करता है, हमको अच्छी विद्याओं के पढ़ने का उपदेश करता है ॥ ६ ॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥

मनुष्य को दुष्ट गुणों को निर्मूल करना चाहिये, दया हीन शत्रुओं को निर्मूल करना चाहिये, बिना विरोधी दान से रहित प्राणियों को सन्ताप से युक्त करूं और इस प्रकार अन्तरिक्ष और अपार सुख को प्राप्त होऊं ॥७

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्वतं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥ ८ ॥

हे परमेश्वर ! आप जगत् रक्षक हो देवताओं को यथा योग्य पहुंचाने, शुद्ध करने, सब सुखों से से युक्त करने, सेवा करने, और स्तुति करने योग्य आपकी उपासना करते हैं। जो हमको दुःख देता है, जिसको हम दुःख देते हैं, उस पीड़ा करने वाले को आप नष्ट कीजिये ॥८॥

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व माह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्। विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥ ९ ॥

हे मनुष्यो ! तुम हवन के योग्य पदार्थों को बढ़ाओ, उसका त्याग मत करो, वे यजमान भी तुमको न त्यागें, तुम पंच यज्ञ करो वह हवन किया हुआ द्रव्य सूर्य के द्वारा दुर्गन्धि आदि दोषों को नष्ट करके शुद्ध वायु को बढ़ा देता है ॥ ९ ॥

देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ १० ॥

सब जगत् की प्रेरणा करने वाले परमात्मा की प्रेरणा से अश्विनिकुमार की दोनों भुजाओं से पूषा देवता के दोनों हाथों से तुम को ग्रहण करता हूं। अग्नि देवता के निमित्त यह प्रिय अंश ग्रहण करता हूं। अग्निषोम नामक दो देवताओं के निमित्त यह प्रिय अंश ग्रहण करता हूं ॥ १० ॥

भूताय त्वा नारातये स्वरभि विख्येषन्दृꣳहन्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्त–रिक्षमन्वेमि। पृथिव्यास्त्वा नाभौ सदयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यꣳ रक्ष॥

हे शकट में स्थित व्रीहिशेष ! प्राणियों के निमित्त तुमको ग्रहण किया है न कि संचय करने को। मैं यज्ञ भूमिको सब प्रकार से देखता हूं। पृथिवी में वर्तमान गृह यज्ञ दृढ हों। मैं इस विस्तीर्ण आकाश में गमन करता हूं। इस पृथिवी की नाभि में तुम को स्थापन करता हूं, माता की गोदी में रहो। हे अग्निदेव ! तुम यज्ञ की रक्षा करो॥ ११ ॥

प्रार्थना

हे माधव ! आप सब सुखों के देने वाले हैं। आप आनन्द वन को पवित्र करने वाले हैं, आप राग, द्वेषादि और विपत्तियों को मिटाने वाले हैं, आपके चरण कमलों में ब्रह्मा, शिव, सनकादि, शुकदेव, शेष और मुनि रूपी भ्रमर सदा वास करते हैं, अर्थात् आपके चरणों में ध्यान लगाये रहते हैं। आप विशुद्ध नील मणि के समान श्याम सुन्दर शरीर वाले हैं, आपकी सुन्दरता असंख्य कामदेव के समान है। आपके शरीर पर पीताम्बर बिजुली के समान शोभित होता है। लाल कमल के समान आप के नयन हैं, आपकी सुन्दर चितवन दीन जनों को सुख देने वाली है। दया और शील के आप समुद्र हैं। काल रूपी गजेन्द्र को पछाड़ने के लिये सिंह, राक्षस रूपी वन को जलाने के लिये अग्नि और मोह रूपी रात को नष्ट करने के लिये आप सूर्य के समान हैं। आपके चारों हाथों में चक्र, गदा, कमल और शंख ऐसा शोभायमान हो रहा है जैसे कमल पर राजहंस शोभा पाता है। आपके मस्तक पर मुकुट, कानों में कुंडल, ललाट पर तिलक और केश मानों भौंरों के समुदाय हैं। आपकी टेढ़ी भौं, सुन्दर दान्तों की पंक्ति, अधर और नासिका अत्यंत मनोहर हैं। आपके सुन्दर सुशोभित गाल, शंख के सदृश गला मानो आनन्द की सीमा हैं। हे हरि! आपकी मधुर मुस्कान चन्द्र की किरण और कुन्द पुष्प के समान है। आपके हृदय पर नवीन मंजरियों की विशाल वन माला और ब्राह्मण के चरण का उत्तम चिन्ह सोह रहा है। आप ब्राह्मणों का मान करने वाले हैं, आप धन्य हैं आप वीर्यवान हैं, बलवान हैं, बहुत बड़ी और अत्यन्त हिमा वाले हैं, गले में मोती माला भुजाओं पर बिजायट, हाथों में रत्न जड़े हुये सोने के कड़े और कमर में मणियों की करधनी आप धारण किये हुये हैं। आप अपने दोनों चरणों में हंस के समान शब्द करने वाले नूपुर पहिने हैं। आप के सब अंग सुहावने और वेश भी लावण्यमय है। सब मंगल सहित तीनों लोकों की शोभा और सुन्दर समुद्र कन्या लक्ष्मी जी आपकी दाहिनि ओर शोभित हैं। गंगाजी के निकट उत्तम किनारे पर सुन्दर मन्दिरमें आप रहते हैं जो मनुष्य आपके दर्शन करते हैं वे बड़भागी हैं, आप सारे मंगलों के धाम जटिल सन्देहों के नाश करने वाले, पाप रूपी वन को उजाड़ने वाले तथा संकट हरने वाले हैं। आप भूमंडल को धारण करने वाले, संसारकी भलाई करने वाले, अजेय, इन्द्रियों से परे, मंगल रूप जगत् के पालन, संहार और उत्पन्न करने वाले हैं तथा आप ही ब्रह्मा, विष्णु महेश हैं। ज्ञान विज्ञान, वैराज्ञ और ऐश्वर्य के आप भंडार हैं। आप अणिमादिक सिद्धियों का प्रचुर दान करने वाले हैं। हे गरुड़गामी ! हम को संसार रूपी सांप पकड़ रहा है। हम उसके भय से बहुत व्याकुल हैं। हमें बचाइये यही करबद्ध प्रार्थना है।

गीता सुनकर अर्जुनने क्या किया

[ले० श्री० पं० गंगाप्रसाद जी अग्निहोत्री जबलपुर]

करिष्ये वचनं तव ।

स समय समूचे संसार में जितने उन्नत राष्ट्र हैं, और उन में जितने उच्च कोटि के विद्वान् हैं, उनमें बहुतांश लोग भगवत् गीता की मुक्तकंठ से भूरि २ प्रशंसा करते हैं। उनकी इस प्रसंशा का कारण यही है कि गीता में उन्हीं उपायों का विस्तृत वर्णन है जिनकी सहायता से निराश और हताश जन अपने जन्म सिद्ध अधिकारों को प्राप्त करके चिरकाल लों उनकी रक्षा कर सकते हैं।

पांडवों ने अपने बल वीर्य से जो राज्य और धन सम्पत्ति प्राप्त की थी, उसे नीच प्रतारणा द्वारा उनके प्रतिपक्षी दुर्योधन ने अपहृत कर लिया था। इतना ही नहीं किन्तु उन्हें प्राणान्तक दुःख देने के अभिप्राय से एक दीर्घकाल तक के लिये निर्वासित कर दिया था। निर्वासित काल के दिनों को काट कर जब पाण्डव लोग अपने जन्म सिद्ध राज को पुनः प्राप्त करने के लिये रणांगण में उपस्थित हुये, उस समय अपने जेठे, बड़े, पूज्यों, मित्रों और आत्मीय जनों को अपने विरोधी जनों की ओर से लड़ने के लिए उपस्थित हुए देख कर अर्जुन को बड़ा भारी मोह हुआ और उस मोह के वश हो कर वह अपने कर्तव्य पथ से च्युत होने लगा। उस के हृदय की इस दुर्बलता और क्लीवता को हटाकर उसे पुनः उसके कर्तव्य पथ पर आरूढ़ करने के लिये गोपाल श्रीकृष्ण ने उसे जो उपदेश सुनाया था, उसी उपदेश का नाम भगवत्गीता है। उस उपदेश में कही हुई बातें अर्जुन के समय में जितनी उपयोगी और लाभदायक थीं उतनी ही उपयोगी और लाभदायक आज भी हैं। इसीलिये समूचा उन्नत संसार गीता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता है।

पाण्डवों के जन्मसिद्ध अधिकारों को उन के विपक्षी कौरवों ने जिस प्रकार अपहृत कर उन्हें सुखों से वंचित कर डाला था ठीक उसी प्रकार वर्तमान भारत वासियों के गोपरिपालन विषयक अज्ञान रूप घोर शत्रु ने भारतवासियों के जन्मसिद्ध सुखों से उन्हें वंचित कर डाला है। वर्तमान भारत वासियों की यदि यह इच्छा है कि वे लोग अपने अतीत सुख समाधानों और मान सन्मान को पुनः प्राप्त करें तो उन्हें उचित है वे अर्जुन की नाईं अपने कर्तव्य कर्म विषयक मोह, अज्ञान, और अकर्मण्यता का त्याग कर गोपरिपालन सम्बन्धी ज्ञान और दक्षता को पुनः प्राप्त कर सुखी और यशस्वी बनें।

भारत के भिन्न २ विषयों के भिन्न भिन्न

नेतागण, उदारता पूर्वक यदि विचार करें तो उन्हें बहुत सुगमता से यह बात ज्ञात हो सकती है कि उन सब सुखों का केन्द्र भारत का राष्ट्रीय धन गोधन ही है। तात्पर्य भारतीय गोधन का सुधार और उत्कर्ष करने से भारतके भिन्न २ अंग परिपुष्ट होकर भारत को सुखी बना सकते हैं। वह इस प्रकार कि जब भारतीय किसानों और ग्वालों में शास्त्र विहीत गोपरिपालन की शिक्षा का यथेष्ट प्रचार किया जायगा तब उस से भारतीय गोधन यथेष्ट मात्रा में उन्नत और उपयोगी होगा। गोधन के उन्नत और उपयोगी होने से भारतीय कृषि की उपज और गव्य पदार्थों की उपज बढ़ेगी। भारतीय कृषि और गव्य पदार्थों की उपज बढ़ कर जब वह सात्विक भोज्यान्नों की यथेष्ट वृद्धि करेगी तब उसे आकंठ तृप्ति पर्यन्त खा पीकर भारत की जनता हृष्ट पुष्ट, मेधावी और सुखी होगी। सारांश, सात्विक भोज्यान्नों की वृद्धि के साथ २ भारतीय कृषक वर्ग बलवान् और समर्थ होकर भारतोद्धारक नेताओं का सहायक बन सकेगा। यथेष्ट सात्विक भोज्यान्नों को पाकर भारत की जनता सुखी और दीर्घजीवी होगी साथ ही विधवाओं की संख्या घटेगी, अछूतों को पेट भर सात्विक भोज्यान्न मिलने लगेंगे, अतः अछूतों की संख्या भी घट जायगी। जो लोग इस समय कल्याण और भक्ति पथ को विस्तृत और सुदृढ़ करने का प्रयत्न कर रहे हैं उनके प्रयत्नों को सफलता तभी प्राप्त होगी जब वे लोग अपने धन, अपने परिश्रम और अपने बुद्धि विभवका पर्याप्त दान देकरगोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार करने में उदार बनेंगे। उन लोगों को इस बात को ध्रुव सत्य मान लेना चाहिये कि जब तक वे लोग गोविन्द श्रीकृष्ण की परमपूज्य और प्राणातिरेक प्यारी विश्व माता गौ के कुल पर इस समय जो अत्याचार किये जा रहे हैं उन्हें रोकने की-गोपरिपालन के शिक्षा के प्रचार की-ओर यथेष्ट ध्यान नहीं देंगे तब तक लोगों को कल्याण पथ का लाभ कभी नहीं होगा। कल्याण पथ का लाभ करने के लिये बलवान् शरीर की अत्यन्त आवश्यकता है। शरीर को बलवान बनाने के लिये सात्विक भोज्यान्नों की बहुत अधिक आवश्यकता है और सात्विक भोज्यान्नों की प्रचुरता के लिये हृष्ट, पुष्ट, प्रसन्न दीर्घजीवी और दुधार गोवंशकी अनिवार्य रूप से आवश्यकता है।

भारत की जनसंख्या इस समय ३२ करोड़ के आस पास है। इस विशाल जन समूह का प्रत्येक जन चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, अपने अस्तित्वाधार सात्विक भोज्यान्नों के लिये गोकुल का अत्यन्त ऋणी है। जिस ऋण से उऋण होने के लिए ३२ करोड़ जनों की आवश्यकता है उस ऋण से थोड़ी सी गोशालाओं और पिंजरापोलों का अनुचित रूप से संचालन करने वाले किस प्रकार उऋण हो सकते हैं? इस पर विवेकी मात्रको गंभीर भाव पूर्वक विचार करना चाहिये। सारांश, इस समय भारत में गोरक्षा का प्रश्न बहुत गुरुतम प्रश्न है। वह जितना गुरुतम है, उतनी ही नहीं किन्तु उससे कहीं अधिक उसकी उपेक्षा की जा रही है। इस समय भारत में जितने कपड़े, सूत, धान्य, रूई, सन, पाट, सोना, चांदी, हीरा मोती और हुंडी पर्चे आदि के धनवान व्यवसाई हैं और उनके सिवा सेवा वृत्ति द्वारा जो भारतीय लोग धनवान् और प्रभावशाली बने हुए हैं, वे सब के सब अपनी धनाढ्यता और प्रभुता के लिये गोकुल के ऋणी हैं। अत्यन्त खेद,

सन्ताप और लज्जा का विषय है कि जिस गोकुलकी सहायता से उक्त लोग प्रभुताशाली बने हैं उस गोकुल की रक्षा और वृद्धि के लिए वे उचित रूप से धन खर्च करना नहीं चाहते। बारंबार उनका ध्यान इस गुरुतर विषय की ओर आकृष्ट किया जाने पर भी वे लोग इस विषय की ओर बिन्दुमात्र भी ध्यान नहीं देते। जब ध्यान देने में इतनी कृपणता करते हैं तब उनसे धन कैसे दिया जायगा? सच पूछिये तो भारत के धनवान् हरिभक्तों की विवेक शून्यता के कारण ही भारत का गोधन बड़ी तीव्र गति से नष्ट किया जा रहा है। चाहिये तो यह कि गोरक्षा का प्रश्न जितना गुरुतम, विशाल और व्यापक है उसी मात्रामें उसके लिए प्रयत्न और उद्योग किया जाय। पर वैसा नहीं किया जाता। तात्पर्य गोरक्षा के नाम पर इस समय जो प्रयत्न किया जा रहा है वह बहुत ही अल्प है। यह अल्प स्वल्प प्रयत्न जब विशाल रूप से व्यापक बनाया जायगा तभी सच्चो गोरक्षा का श्रीगणेश होगा। गोरक्षा के प्रश्न को यथेष्ट मात्रा में व्यापक बनाने के लिए इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि भारतीय किसानों, ग्वालों और गृहस्थों में गोपरिपालन की शिक्षा का यथेष्ट प्रचार किया जाय।

जिन थोड़े से भारतीय धनवान सज्जनों का ध्यान गोरक्षा के प्रश्न की ओर यदा कदा जाया करता है उन से यह विनीत प्रार्थना है कि वे लोग अपने समकक्ष लोगों में गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार की चर्चा को निरंतर बढ़ाते रहा करें। उनमें इस भावना को सदा उत्पन्न करते रहा करें कि जितना रुपया वे लोग श्रीकृष्ण के मंदिरों के बनवाने में, उनके वार्षिक राग भोग में, दातव्य औषधालयों के खोलने में, सर और राय बहादुर आदि उपाधियों के प्राप्त करने में, जातीय झगड़ोंके मुकद्दमे, लड़नेमें लड़के लड़कियों आदिके विवाह आदि मंगल कार्यों के करने में खर्च किया करते हैं उतना ही रुपया नहीं किन्तु उस से अधिक रुपया, वे लोग गौसाहित्य के प्रचार द्वारा गोपरिपालन की शिक्षा में भी खर्च किया करें। उक्त प्रकार से जब वे लोग गोरक्षा के लिए धन खर्च करना आरम्भ करेंगे तभी उन्हें गीता के पाठ और गीता जयंती के प्रदर्शन का पुण्य प्राप्त होगा। अर्जुन गीता को सुनकर न तो संसार त्यागी ही बना था, और न जटिल तपस्वी ही बना था। गीता को सुनकर उस ने अपने प्रकृति सुलभ स्वत्वों की रक्षा ही की थी। हम वर्त्तमान भारत वासियों को भी यही उचित है कि हम लोग गीता को पढ़कर अपने समस्त उपकारों की आदि जननी श्रीगोमाता के कुल की रक्षा मनसा, वाचा, कर्मणा करके अपने आप को ऐहिक और परमार्थिक कल्याणों का अधिकारी बनावें।

आशा है कि इस पत्र के गीता प्रेमी पाठकगण, इस लेख को पढ़ कर अर्जुन की नाईं गोविन्द-श्रीकृष्ण को वचन देंगे कि हे नाथ! हम आज से गोपरिपालन स्वयं करेंगे और उसकी शास्त्र विहित शिक्षा का प्रचार करनेमें कोई बात उठा नहीं रखेंगे। उन के ऐसा करने से वे अवश्य ही कल्याण और भक्ति के अधिकारी बन सकेंगे।

तात्पर्य, गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार किये बिना कोई धनवान् हरि भक्त कल्याण पद का अधिकारी नहीं बन सकता। इस बात को उसे ध्रुव सत्य मान कर गोपरिपालन की शिक्षा प्रचार करने में मुक्त हस्त होकर दान करना चाहिये।

कुछ नहीं

[ले० श्री० आनन्दीप्रसाद मिश्र 'दिद्वन्द्व']

कमरे में झाड़ और फानूस थे। आराम-कुर्सियां थीं। सजावट का सब सामान था, भान्ति भान्ति की सब वस्तुएं थीं, जो ठीक ढंग से सजी हुई थीं। आराम देने वाले पलंग थे, जिन पर लेटते ही नींद आने लगती थी बाहर धूप थी, तेज चमक वाले सूर्य की सीधी, परन्तु तेज किरणों की बहुत तेज रोशनी थी, जिस में सूई तक पड़ी दूर से दिखाई देती थी, इस तेज रोशनी में सभी कार्य सुसम्पन्न हो रहे थे। एक मनुष्य दौड़ता हुआ कार्य कर रहा था, परन्तु कार्य ऐसे थे, कि समाप्त होने ही मे न आते थे, प्याज के छिलके की तरह नये से नया काम आगे आजाता था, जो उसे करना ही पड़ता था, एक काम को समाप्त करता हुआ वह सोचता था, कि अब इनकी समाप्ति होगी, परन्तु एक छिलका उतरते ही दूसरा सामने मौजूद था।

× × ×

वह सोचता था, काम करते करते थक गया हूं, कोई आराम की, चैन की जगह मिले, तो जरा नींद ले सकूं, जिससे कुछ आराम मिले, और म्लान-मुख प्रफुल्लित हो जावे, थकावट दूर हो जाये। कार्य करने वाले ने सोचा और चारों ओर देखा, परन्तु इस प्रकाश में भी उसे कोई चैन का स्थान न मिल सका।

× × ×

निकट बैठे हुए वृद्ध ने कहा:- बच्चा! कमरे के भीतर चले जाओ, वहां आराम की सब वस्तुएं हैं, खूब आनन्द से लेटो, आराम करो, सो लो।

काम करने वाला झट उठा, और दौड़ता हुआ कमरे के भीतर पहुंचा। एक सैकंड कमरे के भीतर ठहरा वहां उसे घुप अन्धेरे के अतिरिक्त कुछ दिखाई न दिया, वह तुरन्त दौड़ा हुआ बाहर आया और कहने लगा:

बाबा जी! यह क्या? हंसी मुझसे ही करनी थी? वहां तो अन्धकार के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

वृद्धने कहा:-बच्चा! वहां तो सब कुछ है।

युवक: नहीं बाबाजी, वहां अन्धेरे के सिवा और कोई वस्तु दिखाई नहीं दी।

वृद्ध: कितनी देर ठहरे?

युवक: खासी देर ठहरा हूं, देखते ही बाहर चला आया।

वृद्ध: अच्छा, अब जाओ, वहां दस पन्द्रह मिनट ठहरो, और फिर बतलाओ।

× × ×

काम करने वाला फिर भीतर पहुंचा, उसकी आंखों में चका चौंध छाई हुई थी, इस कारण कुछ दिखाई नहीं दिया, परन्तु हृदय कड़ा करके फिर ठहरा नेत्रों को मला, उन्हें बन्द किया, और फिर मलते हुए खोला। अब कमरे के भीतर की समस्त वस्तुयें दिखाई देने लगीं। झाड़ भी, फानूस भी, आराम कुर्सियां भी और पलंग भी। इन वस्तुओं को देख कर वह आराम से पलंग पर लेट गया,

सो गया। सोकर उठा तो उसने मुझे यह कहानी सुनाई।

× × ×

मैंने उस से कहा:- तुम तो अपने जीवन में प्रथम बार ही मूर्ख बने हो परन्तु क्या जानते नहीं कि हम लोग प्रतिदिन मूर्ख बन रहे हैं।

उसने पूछा: कैसे ?

मैंने कहा: भोग संसार के धन्धों में फंसे हुये भी कई बार ईश्वर भक्ति करना चाहते हैं, उन्हें कहा जाता है, संध्या करो, वे संसार में काम करते २ झट पट संध्या करने बैठ जाते हैं, लेकिन उठकर कहते हैं, वहां कुछ दिखाई नहीं दिया, मन ठहरा ही नहीं, अन्धेरा ही अन्धेरा है, अजी घुप अन्धेरा है! ऐसी शिकायतें करने वाले लोग सचमुच तुम्हारी ही तरह के हैं। जो संसार के काम धन्धों और चमक-दमक दिखावटी बातों से अन्धे होते हैं, मनको भक्ति रूप कमरे में लेजाते हैं, और एक मिनट ठहर कर फिर लौट आते हैं। आवश्यकता है कि वे भी हृदय कड़ा करके ईश्वर भक्ति में ठहरे रहें और फिर देखें कि उनको कुछ दिखाई पड़ता है या नहीं ?

उसने कहा: ठीक है।

× × ×

साढ़े पांच पर अलार्म लगा हुआ था, घड़ीने घण्टी बजादी, आंख खुल गई। ऐं आज क्या स्वप्न देखा ?

ख्वाब था, जो कुछ कि देखा,
जो सुना अफसाना था।

भगवद्भक्ति किस प्रकार करनी चाहिये

[ले० श्रीपूज्य भोले बाबा अनूपशहर]

यस्याध्ययन मात्रेण भेदबुद्धिर्विनश्यति।
एकंब्रह्म समं भाति तं वन्दे वेद मस्तकम्॥

छप्पय

ब्रह्म जगत् जग ब्रह्म ब्रह्म नहिं जगसे न्यारा
ब्रह्म प्रेम जग प्रेम प्रेम भगवत् कूं प्यारा॥
क्या वैरी क्या मित्र मित्रता सब से कीजे।
दे निजको जो दुःख, दुःख ताहू मत दीजे॥
सियाराम मय जान जग सबकूं माथ नवाइये।
भोला! यहही भक्ति है निज परका हित चाहिये॥

क्या आप ऊपर के प्रश्न का उत्तर चाहते है ? भाई! यह आप का प्रश्न तो छोटा सा ही है! किन्तु इस का उत्तर तो बहुत लम्बा चौड़ा है, एक जन्म क्या करोड़ों जन्म तकभी इसका अन्त

नहीं आ सकता ! जब से इस विश्व का आविर्भाव हुवा है तब से सनकादिक ऋषि मुनि सब भगवत् भक्ति का वर्णन करते चले आरहे हैं। किसी ने आज तक इसका अन्त नहीं कर पाया और आगे अन्त होने की आशा भी नहीं है। आज तक किसी ने भक्ति का कह कर पार नहीं पाया ! जैसे भगवान् अनन्त हैं, ऐसेही उनकी भक्तिभी अनंत है, कोई पार नहीं पा सकता पार किसी ने नहीं पाया फिर भी अपनी २ बुद्धि अनुसार सबने भक्ति का वर्णन किया ही है इसी प्रकार आप पूछते हैं तो हम भी अपनी वाणी को सफल करने के लिये सागर में बिन्दु का अणुमात्र यत्किंचित् भगवत् की भक्ति का परिचय देते हैं। यदि आप संतुष्ट हो जायंगे तो हम समझेंगे कि भगवान् को ही सन्तुष्ट किया ! भगवद्भक्तों का सन्तुष्ट होना भगवत् का ही सन्तुष्ट होना है। यद्यपि भक्ति रूप धन सर्वत्र व्यापक है फिर भी यह धन भक्तों के बांटे में ही आया है। उन्हीं के पास से थोड़ा बहुत प्राप्त हो सकता है ! धनीके पास ही धन मिलता है, कंगाल बिचारा क्या देगा ? वह तो स्वयं ही नंगा है ! क्या नंगो न्हायगी, क्या निचोड़ेगी ? चलिये गङ्गा किनारे पर वहां पर ही भगवत् भक्त प्रायः रहा करते हैं ! गंगा भक्तों को तारती है और भक्तों से ही गंगा का महात्म्य विख्यात होता है। माता पुत्रों को पालती है और पुत्र माता की कीर्ति फैलाते हैं ! देखो सामने पक्की कुटी बनी हुई है, कुटी के बीच एक गुफा है, गुफा में एक सन्त बहुत दिनों से निवास करते हैं, भाग्यवश हमारा भी उनसे परिचय होगया है, चलिए वहीं चलते हैं, पीछे २ चले आइये, सामने से सुन्दरी बाला गंगा जलका भरा हुआ मटका लारही है, शगुन अच्छा है, मनोरथ अवश्य सिद्ध होगा आगई कुटी, कैसी स्वच्छ है ! किसी परम भक्त का हृदय निर्मल हो, ऐसी शोभा है ! वायु भी यहां का कितना शुद्ध है, बलात्कार से मन को भगवद्भजन के लिये प्रेरणा कर रहा है चलो, नीचे गुफा में ! 'अजी दरवाजा तो बहुत छोटा है' भाई ! गुफाओं के दरवाजे छोटे ही हुआ करते हैं, सुकड़ सुकड़ कर घुस चलो ! आहा ! यह तो विशाल गुफा है ! 'यह सामने ऊंचे आसन पर दिव्य मूर्ति कौन बैठे हुये हैं' यह ही भगवद्भक्ति के धनी अवधूत महात्मा हैं, जन्म से घर बार को त्याग करके भगवद्भक्ति में लगे रहते हैं, संग्रह कुछ नहीं रखते, एक कमंडलु दो कोपीन के सिवाय यहां और कुछ दिखाई ही नहीं देता साक्षात् वैराग्य की मूर्ति हैं भीतर और बाहर दोनों प्रकार के त्यागसे पूर्ण हैं आजाता है, सो खालेते हैं, बाकी बचा देते हैं, दूसरे समय के लिये संचय कुछ नहीं रखते मान का इनके पास गुमान भी नहीं है !

'अवधूत जी के सामने बहुत ही सीधे सादे मात्र एक धोती पहिने हुये भोले से यह कौन बैठे हुये हैं'? अजी ! यह यहां के विष्णुदत्त पंडित हैं, यह वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, योग सांख्य वेदान्त के ज्ञाता दिग्गज विद्वान् हैं, षडङ्ग सहित इन्होंने वेदों का पाठ किया है, व्याकरण के आचार्य हैं जो कोई पं० शास्त्रार्थ करने यहां आता है, इनसे पराजय हो कर ही जाता है ! यह महान् गृहस्थ हैं, स्त्री पुत्र पौत्र आदि बड़े कुटुम्ब वाले हैं, अन्न का पूर्ण संचय रखते हैं, कोई अतिथि साधु संन्यासी जो इनके घर पर आता है, सबका आदर सत्कार नम्रता पूर्वक सेवा करते हैं, इतना होने पर भी यह पूर्ण वैराग्यवान् हैं अपनी श्रीमानता विद्या और कुल का इन्हें

किंचित् भी मान नहीं है। अवधूत जी के परम भक्त हैं बच्चों की सी शंका महात्माजी से आकर किया करते हैं। महात्मा जी भी प्रसन्नता पूर्वक इनकी शंकाओं का समाधान किया करते हैं। इन दोनों के दर्शन से ही मनुष्य कृतार्थ हो जाते हैं, इनकी वार्तालाप सुन कर तीनों ताप दूर भाग जाते हैं, आओ, चुपचाप बैठ जाओ और एकाग्र मन होकर इनके प्रश्नोत्तर सुनो:–

पंडित जी:-(हाथ जोड़ कर) महाराज! भगवान् की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिये ?

अवधूत: (प्रसन्न होकर बच्चा ! ईश्वर में परम अनुराग करने का नाम भक्ति है, यह शांडिल्य ऋषि का मत है, अनुराग प्रेम को कहते हैं, ईश्वर में प्रेम करना चाहिये, यह ही भक्ति है।

पंडित: महाराज ईश्वर को बिना जाने ईश्वर में प्रेम कैसे किया जाय ? जाने बिना तो किसी वस्तु में प्रेम नहीं हो सक्ता !

अवधूत: बच्चा ! एक श्रुति कहती है: 'यह सब चराचर जगत ईश्वरसे व्याप्त है' दूसरी श्रुति कहती है:-'यह सब विश्व निश्चय ब्रह्म ही है' इसी प्रकार अन्य श्रुतियां भी जगत् को ब्रह्म रूप बताती हैं गीता में भगवान् कहते हैं- सूत्र में मणियों के समान यह सब जगत् मुझ में ओत प्रोत है' इस प्रकार श्रुति और स्मृति दोनों से जगत् और ब्रह्म ईश्वर की एकता सिद्ध है। युक्ति से भी ऐसा ही सिद्ध होता है, कारण से कार्य भिन्न नहीं होता तब जगत् और ब्रह्म एक ही हुये। नाम, रूप और क्रिया से जगत् और ब्रह्म में भेद भासता है नहीं तो दोनों एक ही हैं। नाम, रूप और क्रिया में व्यापक ब्रह्म सगुण ईश्वर कहलाता है, और इन तीनों से रहित निर्गुण ब्रह्म है। जैसे जल में और बरफ में भेद नहीं है ऐसे ही निर्गुण और सगुण में भेद नहीं है। सारांश यह है कि चराचर जगत् ईश्वर रूप ही है। प्राणी मात्र से प्रेम करना. सबसे समान बर्ताव करना, रागद्वेष नहीं करना शत्रु मित्र को एक समझना, बैरभाव किसी से नहीं करना, यह ही भगवान् की भक्ति है। भगवान् ने गीता में कहा है 'कि जो सब प्राणियों में निर्वैर होता है, वह मुझे प्राप्त करता है'। देख! जैसे प्रतिकूल वस्तु से तुझे दुःख होता है, ऐसे ही सब को दुःख होता है इसलिये ऐसा प्रयत्न कर कि तेरी तरफ से किसी को प्रतिकूल वस्तु की प्राप्ति न हो जैसे तुझे अनुकूल पदार्थ से सुख होता है ऐसे ही सबको होता है इसलिये सबको अनुकूल वस्तु की प्राप्ति कराने का यथा सामर्थ्य प्रयत्न कर ! अपने पड़ोसी को अपने समान ही प्यार कर, यह ही भगवान् की सर्वोत्तम भक्ति है। जैसे मुझे अपने बाल बच्चे प्यारे हैं ऐसे ही सबको प्यारे हैं किसी के बाल बच्चों को कष्ट मत दे ! जैसे तुझे अपना धन प्रिय है ऐसे ही सबको प्रिय है, अन्याय से किसी का धन लेने की इच्छा मत कर ! जैसे तुझे पतिव्रता स्त्री प्रिय है। इसी प्रकार सबको प्रिय है, किसी की बहू बेटी को कुदृष्टि से मत देख ! जो २ शास्त्र विहित कर्म बताये हैं, उनका आचरण और निषिद्ध कर्मों से बचा रह, स्वयं भी ऐसा ही कर और दूसरों कोभी ऐसा ही उपदेश दे। जो अपने समान दूसरों के सुख दुःख को जानता है वह परम योगीहै, ऐसा भगवान्‌का वचन है। यह ही भगवान् की भक्ति है।

डाल में, पात में, फूलों, मूलों, घरों जंगल में सर्वत्र चराचर में भगवत् रूप देखना इसका

नाम सच्ची भक्ति है। एक दिन शाम को एक बगीचे के कोने में पूर्ण प्रेम की ध्वनि से नीचे का भजन सुनाई दे रहा था:-

मैं अपने राम को रिझाऊं ॥टेक॥
जंगल जाऊं न वृक्षन छेदूं,
ना कोई डार सताऊं।
पात पात में है अविनाशी,
वाही में दर्श कराऊं ॥ मैं० ॥१ ॥
औषधि खाऊं न बूंटी लाऊं,
ना कोई वैद्य बुलाऊं।
पूरण वैद्य मिले अविनाशी,
ताहि को नाड़ी दिखाऊं ॥ मैं० १॥

चित्त को आकर्षण करने वाला ऊपर का भजन सुनकर एक रामदास नामके युवा पुरुषका मन वैराग्य से पूर्ण होगया, नेत्रोंमें हर्षके आंसू भरआये बागके कोनेमें जाकर देखा तो कबीरजी को गाते हुये पाया। उनको देखतेही रामदास उनके चरणोंमें गिर पड़ा और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा "भगवन्! आपसर्व शक्तिमान हैं, आप भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं, कृपा करके मुझे भी भगवान का दर्शन कराइये, मुझे आपके ऊपर श्रद्धा है, आपके कहने से मैं सब कुछ छोड़ने को और करने को तैयार हूं"। रामदास का सच्चा भक्ति भाव देख कर कबीर जी मने न कर सके. परसों के दिन दर्शन कराने की प्रतिज्ञा करली और जो कुछ सामग्री की आवश्यकता थी, सब मौजूद रखने को समझा दिया।

दूसरे दिन रामदास ने खुशी २ अपनी सब जायदाद बेच कर चांवल, खांड, घी, दूध आदि खरीद किया और नियत दिन के लिये साधुओं को निमंत्रण देकर अनेक प्रकार के व्यंजन तैयार कराये।

इधर षट् प्रकार के भोजन तैयार किये हुये रक्खे हुये हैं, उधर संत महात्मा आकर अपने भजन ध्यान पूजा पाठ में लगे हुए हैं, रामदास अत्यंत प्रेम भक्ति के साथ एकान्त में बैठा हुआ भजन कर रहा है आशा कर रहा है कि अब भगवान् दर्शन देते हैं, अब दिए अब दिए की लौलग रही है।

जब रामदास को दर्शन हो जायंगे तब सब साधु मिलकर भोजन करेंगे। सब आंखें फाड़ फाड़ कर प्रतीक्षा कररहे हैं, कब शुभ लगन आवे! दोपहर होगया. सूर्य पूर्व से शिर पर आया, धीरे २ दिन ढलने लगा, तीसरा पहर होगया, रामदास को अभी भगवान् के दर्शन का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ! कई नये मुंडे हुए युवक साधु भूख से व्याकुल हुए परमेश्वर को उलटी सीधी सुनाने लगे हैं: अरे ईश्वर! हमारे पेट में तो चूहे लौट रहे हैं! तुड़ाके की भूख लग रही है। स्वादिष्ट भोजन तैयार किया हुआ रक्खा है। हमें क्यों भूखा मार रहा है, आके दर्शन क्यों नहीं देता?" कई उदास बैठे हुए हैं! कई कबीर जी पर आक्षेप लगा रहे हैं। कई रामदास जी को पागल बता रहे हैं। "कैसा मूर्ख है कहीं कलियुग में भगवान के दर्शन होते होंगे, दर्शनों के लिए कैसा रीझा है? अपना सर्वस्व धन खो दिया, अपना माल खोया सो खोया, हमें निमन्त्रण देकर भूखा मार रहा है। इसे सूझी क्या?" कई प्रेमी भक्त आनन्द में मग्न हो रहे हैं "कहीं रामदास के चरणों के अनुग्रह से हमें भी भगवान् के दर्शन मिल जांय, क्या बड़ी बात है, ईश्वर सब भक्तों के मनोरथ पूर्ण

करता है, कदाचित् आज हमारा मनोरथ भी पूर्ण हो जाय ! इस प्रकार सब आशायें लगाये हुये हैं। न बाबा आवें न घंटा बाजे ! सबकी यह ही मसल थी !

इन लोगों को तो अपने २ तीन चांवल पकाने दो, चलो, उधर भोजनों की सुगंधलें, कैसी महक आरही है ? पवित्र रसोई के चौके में देखिये क्या घमसान मच रहा है। अरे यह भैंस किधर से आगई ! खीर का बटला औंधा पड़ा है ! मान पुये तित्तर बित्तर होगये हैं ! कोई आधा है, कोई चौथाई रह गया है, सब झूंठे हो गये हैं ! दाल के हंडे फूटे पड़े हैं - भैंस ने चुल्हे भी सींगों से तोड़ दिये हैं, खुरों से चौका खोद डाला है ! ठोर २ गोबर कर दिया है, अब भैंस थूथनी उठा कर धूल उड़ाने लगी है ! डकरा रही है !

भैंस का डकराना सुन कर साध लोग चौंक पड़े, दौड़ कर चौके में गये तो सब रसोई बिगड़ी हुई पाई ! सबके मनोरथों पर पानी फिर गया ! दिन भर के भूखे तो थे ही, अब आशा टूटी हुई देख कर उनके क्रोध का पार न रहा ! तमोगुण की ऐसी आग भड़की कि पूछो ही मत ! उधर से रामदास सिड़ी के समान लठ लेकर आ गया ! साधों ने भैंस को घेर रक्खा था, रामदास ने भैंस की खूब गत बनाई ! डंडों से ऐसी आवभगत की कि बिचारी की पीठ सूज गई, वर्ष दिन का खाया पिया निकल गया ! कई कबीर जी को गालियां सुनाने लगे, क्रोध में अपना पराया होश तो रहता नहीं ! न मालुम क्या २ कहनी न कहनी बातें सुनाने लगे !

भैंस घायल होकर लोहू लुहान हुई लंगड़ाती २ करुणामय शब्द डकराती २ बड़ी कठिनाई से अपने प्राण बचा कर बाग के उस कोने में आनिकली जहां कबीर जी बैठे हुये थे, पीछे २ रामदास और साध लोग भी कबीर जी की खबर लेने के लिये आरहे थे ! आकर क्या देखते हैं कि भक्त शिरोमणि कबीर जी भैंस के गले लिपट कर करुणामय होकर रो रो कर कह रहे हैं:-

"हे भगवन् ! हाय ! आज आपके वह चोटें लगी हैं जो रावण से युद्ध करते समय भी नहीं लगी थीं ! हाय ! आज आपको वह कष्ट उठाना पड़ा है, जो कंस के साथ लड़ने में भी नहीं हुआ था। महाभारत में बिना अस्त्र शस्त्र अर्जुन का सारथी बनने में भी आपको इतना कष्ट न हुआ होगा ! इत्यादि-

कहां तो साध लोग कबीर जी को मारने आरहे थे, उनकी ऐसी करुणामय वाणी ने सुनने वालों के दिलों में ऐसा परिवर्तन कर दिया कि जैसे आग के साथ मिलते ही अन्य पदार्थ भी अग्नि रूप ही हो जाते हैं ऐसे ही इस अवसर पर कबीरजी के प्रभाव से रामदास आदि के अंतःकरण ऐसे स्वच्छ और निर्मल हो गये कि उनके अंतःकरणों में से द्वैतता जाती रही, दुई का परदा उठ गया, परमात्मा का आविर्भाव हुआ और सबको प्रत्येक वस्तु में एक आत्मसत्ता ही भासने लगी, सर्वत्र ही भगवान का दर्शन होने लगा।

पदः-मन ऐसो निर्मल भयो जैसे गंगा नीर।
पीछे २ हरि फिरें कहत कबीर कबीर ॥

सबकी चिंतायें, वासनायें, देहासक्ति भाग गईं ! अपने एक देह का भान मिट कर सबके देह अपने ही देह भासने लगे, सब सृष्टि का कर्ता धर्ता

सबका अधिष्ठान अपना ही आत्मा दिखाई देने लगा! अपूर्व दर्शन है, ऐसे दर्शन में द्रष्टा और दृश्य दो नहीं रहते, स्वयं ही दृश्य और स्वयं द्रष्टा होता है। परमेश्वर का यह ही दर्शन है, चराचर में मैं ही एक हूं। इस दर्शन के आगे साइंस, फिलोसोफी, लौजिक, और व्याकरण सब फीके पड़ जाते हैं। जैसे सुवर्ण के सामने मुलम्मे के कुछ दाम नहीं हैं ऐसे ही इस दर्शन के आगे सब शास्त्रों की कुछ कीमत नहीं है। चमड़े की आखों से ऐसा दर्शन नहीं होता!

हे विष्णु दत्त! जगत और परब्रह्म में भेद नहीं है भेद देखना ही परमेश्वर के दर्शन में आड़ है, जहां भेद मिटा सर्वत्र परमात्मा ही दिखाई देता है, भेद दृष्टि का निर्मूल करना ही ईश्वर की भक्ति है! न शत्रु है, न मित्र है, सब एक शिल के बट्टे हैं, मैं, मेरा, तेरा त्याग दे, अपना व्यक्ति का अभिमान मिटा दे, सब तू ही है, इस अभिमान ने सबकी आंखों पर पट्टी बांध दी है इसी से सब अंधे होरहे हैं, न कोई अपना है, न पराया है, सब अपने ही हैं. फिर रागद्वेष कैसा? सब से मेल रखना सबमें एक परमात्मा देखना अथवा सब में अपने को ही देखना! यह ही भक्ति है! चाहे विरक्त हो, चाहे गृहस्थ हो, जिसने अपना व्यक्तित्व मिटा दिया है, जो अहंकार नगर से मुक्त हो गया है, वह ही भक्त है! मैं मेरा मान कर तू अपने को साढ़े तीन हाथ का मानता है इसीसे दुःख होता है। इस दुःख से छुटने का यह ही उपाय है कि सबमें आत्म भावना कर, सर्वात्मभाव करना ही ईश्वर भक्ति है।

विष्णुदत्तः- महाराज! आप विरक्त हैं, आप से सर्वात्मभाव बन सक्ता है हम गृहस्थ ऐसा कैसे कर सक्ते हैं? गृहस्थ में ऐसा होना संभव होता तो आप क्यों विरक्त होते? आपने सबका त्याग क्यों किया है?

अवधूतः- बच्चा! भीतर का त्याग ही मुख्य है, बाहर का त्याग तो मात्र भीतर के त्याग में मदद रूप है। पूर्व में वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, जनक, पराशर आदि अनेक भक्त और ज्ञानी हुये हैं, ये सब गृहस्थ ही थे. मैंने किसी का त्याग नहीं किया है, मुझे ही सब ने त्याग दिया है, ज्ञानी भक्त के लिये ग्रहण और त्याग दोनों एक से ही हैं, पूर्ण भक्त न तो किसी को त्यागता है, न किसी को ग्रहण करता है, यथाप्राप्त में संतुष्ट रहता है, यथा प्राप्त में संतुष्ट रहना, इसी का नाम भक्ति है। यह तो तू जानता ही है कि तू न तो कुछ लाया था, न कुछ ले जायगा, सब पृथिवी के पदार्थ ईश्वर के हैं, सब यहीं रहेंगे, फिर उनमें ममता बांध कर दुखी क्यों होना चाहिये? किसी पदार्थ में ममता न करनी, अधिकार के अनुसार अधिकारी को देना लेना, इतना ही तेरा कर्तव्य है, अपना कुछ न समझ कर अधिकारियों को यथा अधिकार देना इसी का नाम भक्ति है। स्वधर्म का आचरण यानी अपने २ वर्ण के धर्मों का पालन करना भक्ति है ऐसा गीता में भगवान् ने कहा है। वर्ण धर्म लौकिक और मिथ्या हैं, फिर भी वास्तविक धर्म की प्राप्ति कराते हैं। इसलिये अवश्य आचरण करने योग्य हैं।

रहदास एक प्रसिद्ध भक्त हुये हैं, यह जाति के चमार थे जूते बनाया करते थे। एक दिन एक ब्राह्मण इनकी दुकान के सामने से निकला और हंसी से कहने लगा "भगतजी! मैं रंगनाथजी के दर्शन करने जारहा हूं, क्या आप ठाकुरजी को कुछ

भेंट भेजना चाहते हैं"? रहदास बोले "मिसुरजी! हमको ब्राह्मणों को दान देने का अथवा मंदिर में भेंट चढ़ाने का अधिकार नहीं है, जाने का भी अधिकार नहीं है, फिर भी ब्राह्मण वचन प्रमाण है यदि आप कहते हैं, तो एक पैसा लेते जाइये किंतु ठाकुरजी हाथ बढ़ा कर ले लें तब तो दे देना नहीं तो लौटा लाना क्योंकि शास्त्र विरुद्ध करना ठीक नहीं है, यदि ठाकुरजी ले लेंगे तब तो फिर मेरा और आपका दोष न रहेगा"! यह कह कर रहदास ने एक पैसा ब्राह्मण को दे दिया! ब्राह्मण ने पैसा ले लिया है, और मार्ग में इस प्रकार विचार करता हुआ जा रहा है ओ हो! इस चमार की शास्त्र पर कितनी निष्ठा है शास्त्र विरुद्ध करने से कितना भय करता है, मैंने शास्त्र विरुद्ध कह दिया था, उस का पातक मुझ पर ही होगा, किन्तु ठाकुरजी हाथ बढ़ा कर कब लेने वाले हैं, पैसा लौटा लाऊंगा और आगे किसीसे ऐसा नहीं कहूंगा"! ब्राह्मण मन्दिर में पहुंचा, ठाकुरजी को प्रणाम किया, लौटना चाहता था, क्या देखता है कि ठाकुरजी हाथ बढ़ा कर पैसा मांग रहे हैं! भला! जिन्होंने द्रौपदी का चीर बढ़ा दिया था, गज की रक्षा करने को क्षण से भी प्रथम वैकुंठ से बिना गरुड़ पर चढ़े ही आ गये थे, जिन्होंने तीन पगों में ही ब्रह्मांड और बलि का शरीर नाप लिया था, प्रह्लाद के लिये खम्ब में से निकल आये थे, गोवरधन को हाथों पर उठा लिया था, चौदह हजार राक्षसों को अपना रूप बना कर एक दूसरे से लड़वा कर मार दिया था, उनके लिये अपने सच्चे भगत रहदास की प्रतिज्ञा रखने के लिये हाथ बढाना कौनसी बड़ी बात थी! ब्राह्मण को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ और वह पैसा ठाकुरजी के हाथ में देकर आश्चर्य करता हुआ रहदास के पास आया और कहने लगा 'भगतजी यह सिद्धि आपको कैसे प्राप्त हुई! ठाकुरजी आपसे इतने प्रसन्न कैसे हैं कि अनहोनी बातभी करने लगे और हाथ बढ़ा कर आपका पैसा ले लिया, हम ब्राह्मण भगवान् के मुख्य पुजारी हैं, किसी ब्राह्मण की भेंट कभी ठाकुरजी ने प्रत्यक्ष हाथ बढा कर नहीं ली"! रहदास ने हंस कर कहा "मिसुर जी! भगवान् श्रद्धा भक्ति से प्रसन्न होते हैं' मुझे भगवान् के वाक्य वेद पर इतनी श्रद्धा है कि मैं अग्नि को हाथ में लेकर कह सक्ता हूं कि वेद सत्य हैं, वेद मैंने पढ़े नहीं हैं किंतु गुरु ने मुझे वेद का रहस्य बता दिया है, मैं शास्त्र विधि से विरुद्ध कुछ नहीं करता हूं. शास्त्र को प्रमाण मानता हूं, जो शास्त्र को प्रमाण मानता है, वह ही ईश्वर का भक्त हो सक्ता है हम लोग न तो ब्राह्मण को दान देते हैं, न मंदिर में जाते हैं, न किसी प्रकार का संचय करते हैं, जो कमाते हैं रोज खर्च कर देते हैं, दूसरे दिन के लिये नहीं रखते, जो कुछ शास्त्र ने अधिकार दिया है, उसी के अनुसार वर्तते हैं। जो शास्त्र के वचन मानता है, वह ही भगवान् को प्यारा है। भगवान् ने मुझे शूद्र देह दिया है इसी को मैं सर्वोत्तम समझता हूं, ऊंचा बनने की इच्छा नहीं करता, देह से सब शूद्र ही हैं और आत्मा सबका पवित्र है, उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं होता! देह व्यवहार झूंठा है, उसके लिये ऊंचा बनने की मूर्ख इच्छा करते हैं। जो कुछ अपने कर्म से भगवान् की तरफ से प्राप्त हो, उसमें संतुष्ट रहना और चित्त को मैला न करना, इसी को मैं भगवान् की भक्ति समझता हूं, इसी से भगवान् मुझ से प्रसन्न है। आपनो ब्रह्म

देव हैं, आप से मैं अधिक क्या कहूं, आप सबके गुरु हैं, सब जानते हैं"। रहदास की वाणी सुन कर ब्राह्मण आश्चर्य करता हुआ चला गया और दिन प्रतिदिन उसका विश्वास शास्त्र पर बढ़ने लगा !

हे विष्णुदत्त ! ईश्वर की भक्ति सभी करते हैं जिसको जितना ज्ञान है और जिस की शास्त्र गुरु और ईश्वर में जितनी श्रद्धा है, उतना ही उसको फल है ! अपने सामर्थ्यानुसार किसी प्राणी को दुःख न देना और देहासक्ति को निर्मल कर देना यह ही ईश्वर की परम भक्ति है, क्योंकि देहासक्ति से ही सब प्रकार के पाप होते हैं । एक ईरानी फकीर कहता है:-

नमाजे जाहिदां सिजदा सजूदस्त ।
नमाजे आशिकां तर्के वजूदस्त ॥

भावार्थ इस का यह है कि तपस्वियों की भक्ति उठना बैठना यानी नमस्कार करना है और प्रेमियों की भक्ति अपने व्यक्तित्व को मिटा देना है । ईसामसीह फरमाते हैं:-जो अपने एक गाल पर थप्पड़ मारे, उसके सामने दूसरा गाल कर दो ! अपने पड़ोसीको अपने समान प्यार करो । बुद्धभगवान का वचन है 'अहिंसा परमो धर्मः' किसी प्राणी को तन, मन अथवा वचन से पीड़ा मत दो । अपने खेत को रखाते हुये नानक गुरु कहते हैं:-

राम दी चिड़ियां राम दा खेत ।
खाओरी चिड़ियां भर भर पेट ॥

व्यास भगवान् अठारह पुरानों का सार कहते हैं :- दूसरे को पीड़ा देने के समान पाप नहीं है और दूसरे का हित करने के समान कोई पुण्य नहीं है । सन्यासियों का परमधर्म सबको अभय दान देना है, सब मजहब दूसरे को पीड़ा देना पाप मानते हैं और दूसरे का उपकार करने को पुण्य मानते हैं । तब यह ही सिद्ध हुआ कि किसी का चित्त न दुखाना, यह ही ईश्वर की मुख्य भक्ति है, यह ही मनुष्य मात्र का धर्म है, यह ही कल्याण का मार्ग है ।

हे विष्णुदत्त . मैं, मेरा, रागद्वेष छोड़ दे, सत्य से प्रेम कर, इसी प्रकार भक्ति कर ऐसा करने से तेरी भेद बुद्धि मिट जायगी और एक आनन्द स्वरूप परमात्मा सर्वत्र पूर्ण दृष्टि में आवेगा । यह ही भक्ति की अन्तिम सीमा है, यह ही ज्ञानकी पराकाष्ठा है, वेद, पुराण, इतिहास सन्तों का मत यही है, भगवान् तेरा कल्याण करें और सब जीवों को सुबुद्धि दें ! तथास्तु ! बोलो ! वेद भगवान् की जय !

अखिल विश्वमें एक रस भोला ! भगवत् जान ।
एक पिताके पुत्र सब, सब ही भाई मान ॥१॥

खोज

(ले० श्री हरिशंकर जी देहली)

प्रियतम ।

तुम कहां हो ? मैंने त्रिलोक्य का चप्पा २ खोज डाला परंतु ... ... तुम ... ... नहीं मिले ।

क्या नदी क्या नाले, क्या मैदान क्या जंगल क्या उद्यान मैंने सब ही की सड़क छान डाली परंतु

तुम्हारे दर्शनों से नेत्र सफल न हुये।

वीर से वीर हृदय को दहला देने वाले विजन वनों में, बुझे हुए अंगारों की भान्ति मुरझाये हुए हृदयों को कमल समान प्रफुल्लित करने वाले हरे भरे उपवनों में मैं तुम्हारे लिये ... ... केवल तुम्हारे लिये ... ... भटकता फिरा परन्तु तुम्हारे दर्शन न हुये।

अमावस्या की निशा से अधिक अन्धकारमयी स्थानों में मैंने इस आशा पर कि शायद तुम अन्धकार दूर करने के लिए मणि रूप से वहां विराजमान हो, उतरा परन्तु मणि के स्थान में निराशा रूपी कोयला ही प्राप्त हुआ।

मैंने अथाह सागरों में डुबकियों पर डुबकियां लगाईं, क्यों? इस आशा पर कि इच्छित मोती मिल जायें परन्तु वह आशा ... ... भ्रम मात्र सिद्ध हुई।

मैं आशा कमण्डल लिये दर दर तुम्हारे दर्शन की भीख मांगता फिरा परन्तु मेरा कमण्डल कहीं न भरा ... ... किसीने मुझे तव-दर्शन की भीख न दी।

आकाश से बातें करते हुए ऊंचे ऊंचे पर्वतों पर मैं तुम्हारे दर्शनों की आशा के बल पर चढ़ा परन्तु निराशा की एकही ढकेल से ... ... नीचे आ रहा।

नदीकी चंचलता भरी लहरों की सुरीली तान में, बुलबुल के मधुर गान में, उच्च पुरुषों के आत्म सम्मान में मैंने तुम्हें खोजा परन्तु ... ... तुम ... ... नहीं मिले, सुगन्धित पुष्पों की महक में, प्रज्वलित अग्नि की लहक में, मैंने तुम्हारा पता पाना चाहा परन्तु सफलता ... ... ने मम अभिलाषा का ... ... स्वागत ... ... नहीं किया। ... ... वृक्षों के मस्ताना वार झूमने में, कोयल की कू कू में, पपीहे की पीपी में मैंने तुम्हें तलाश किया परन्तु ... ... तुम ... ... नहीं मिले।

वीरों की वीरता में, धीरों की धीरता में, विनयी की विनय में, अभिनेता के अभिनय में, मैंने तुम्हें ढूंढा परन्तु ... ... तुम ... ... नहीं मिले।

नवजात कोमल शिशु की भोली मुस्कान में, कृष्ण अधरामृत पान की हुई वंशीकी मधुर तान में, वीरों की कभी न मिटने वाली आन में, मैं तुम्हें देखता फिरा परन्तु प्रतीक्षा से थकित नयनों के ऐसे भाग्य कहां जो तुम्हारे दर्शनामृत से अश्रु-पूर्ण होते। ... ... प्रेमी के प्रेम भरे नयनों में, भोले शिशुके मधुर तोतले बैनों में तारा-प्रदीपों से आलोकित अन्धयारी रैनों में मैं तुम्हें ... ... खोजता फिर ... ... परन्तु ... ... तुम ... ... दिखाई न दिये।

माता के अथाह प्यार में, प्रेमी के स्नेह पूर्ण दुलार में, दुःखी-हृदय के अन्धकार में, मैंने तुम्हें टटोला परन्तु ... ... तुम ... ... हाथ न आये।

दुःख की छटपटाहट में वियोगी की विलविलाहट में, प्रेमी की सलसलाहट में, मैंने तुम्हारा अनुभव करना चाहा परन्तु ... ... सफलता से भेंट न हुई।

दुःखी-हृदय की आह में, चातक की चाह में, प्रेमी की राह में, मैंने तुम्हें तलाश किया परन्तु तुम्हारे स्थान में ... ... असफलता से ... ... मिलन हुआ।

रवि की चमक में, शशि की दमक में, प्रेम

की सड़क में, मैंने तुम्हें देखना चाहा परन्तु तुम ... दिखाई न दिये।

दीपक की टिमटिमाहट में, विद्युत की चमचमाहट में, सूर्य की दमदमाहट में, मैंने तुम्हारे चिन्ह पाना चाहा परन्तु ... ... सफलमनोरथ ... ... न हुआ।

जिस जगह तुम्हारे मिलन की सम्भावना थी वहां भी और जिस जगह असम्भावना थी, वहां भी मैंने दोनों ही जगह तुम्हें खोजा, अपनी जान में कोई स्थान खोज से शेष न रक्खा परन्तु ... ... फिर भी ... ... तुम से ... ... मिलन ... न हुआ।

प्रातःकालीन उदय होते हुए सूर्य की लाली में लहलहाते हुए हरे भरे खेतों की सुहावनी हरियाली में, परोपकार रत वृक्षों की प्रत्येक झूमती हुई डालों में, मैंने तुम्हें तलाश किया परन्तु ... तुम ... ... नहीं मिले।

हंसते हुए प्रभात में, निस्तब्ध तारों में शीतल चन्द्र के कोमल गात में मैं तुम्हें खोजा किया परन्तु तुम्हारे दर्शन ... ... न हुए।

शरद्- ऋतु के कड़कड़ाते जाड़े से कंपकंपाते हुए मैं तुम्हारी दर्शनाग्नि की तलाश में घर घर फिरा परन्तु सफलता दूर ही रही, ज्यों २ मैं आगे बढ़ता था, सफलता पीछे हटती जाती थी-

सुहावनी मन लुभावनी बसंत ऋतु में कलियें चटकीं पुष्प मटके लतायें लहरायीं, वृक्ष फले परन्तु मेरे लिये यह सब नहीं के बराबर था क्योंकि मम अभिलाषा रूपी लता वैसी की वैसी ही शेष रही बसंत उसमें नवजीवन संचार करने में उसको नये सिरे से लहलहाने में नितान्त असमर्थ रहा।

ग्रीष्म - ऋतु की बिलबिलाने वाली कड़ी धूप में, तुम्हारे दर्शनामृत की चाह ने मुझे निचला न बैठने दिया मैं मारा २ इधर से उधर फिरता रहा परन्तु यह सब- परिणाम रहित सिद्ध हुआ। मैं तुम्हारे दर्शन बिन- प्यासे का प्यासा ही रहा, अपने दग्ध हृदय को शान्त करने के लिये मुझे तुम्हारा दर्शनामृत उपलब्ध न हो सका।

वर्षा - ऋतु की डरावनी अन्धकारमयी रातों में वर्षा जल में छपाछप करते हटा - आकाश बून्दों की झड़ी नंगे शीश पर सहते हुए, मैंने तुम्हें बनबन घर २ तलाश किया बादलों की असहनीय गड़ गड़ाहट में बिजली की नेत्रों को चुन्धिया देने वाली लपलपाहट में, तुम्हें ढूंढता रहा परन्तु तुम्हें पाने में असफल ही रहा! वर्षा ने खेतों को हरा भरा करने के साथ ही, मम असफलता के घाव को भी हरा कर दिया-

तुम्हें तलाश करते २ मुझे पलों, घड़ियों, दिनों वर्षों की तो गिन्ती ही क्या - युगों बीत गये परन्तु तुम्हें - न दर्श सका।

तुम्हें खोजते २ तुम्हें ढूंढते २ तुम्हें तलाश करते २ मैं अब थककर चूर होगया हूं अतीव क्लांत होगया हूं मुझे पग उठाना दूभर होगया है। मेरे अंग प्रत्यंग शिथिल होगये हैं यहां तक कि तुम्हें खोजते २ मैंने स्वयं को - खो दिया तुम्हें ढूंढते २ ... ... मुझे ... ... अपनी ... सुधि न रही है ... मैं ... ... अचैत सा हो गया हूं, ऐसी दशा में ऐसी हालत में, मैं तुम्हीं से प्रियतम! तुम्हीं से- तुम्हारा पता ... ... पूछता हूं बताओ तुम कहां हो ?

श्रीकृष्ण चरित

गतांक से आगे।

कंस वध

मथुरा में पहुंच कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने महात्मा अक्रूर से कहा कि आप रथ को अपने घर पर ले जाइए, श्रीकृष्ण जी की आज्ञा से अक्रूरजी रथ को घर लेगए और कृष्ण बलदेव मथुरापुरी में अनेक भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करने के लिए विचरने लगे। भगवान् ने किसी को अपने दर्शनों से, किसी को कृपा की दृष्टि से तथा किसी को आशीर्वाद से कृतार्थ किया। चलते चलते मार्ग में कंस की दासी कुबड़ी चन्दनका पात्र लिए मिली। उसने भगवान् के ललाट पर श्रद्धा भक्ति से चन्दन लगाया तो उन्होंने अपनी सहज दया से उसका कूबर दूर कर दिया।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण जी धनुषशाला में गए। वहां उन्होंने इन्द्र के धनुष को देख कर उठा लिया और लीला पूर्वक पल भर में सब के देखते देखते गन्ने की भान्ति तोड़ डाला, रक्षकों के चींचपट करने पर उनको भी स्वधाम में भेज दिया। जब कंस ने धनुष का टूटना तथा रक्षकों का मरना सुना तो उसे बड़ा भय प्रतीत हुवा; रात भर निद्रा न आई और श्री कृष्ण जी उसे काल दण्ड हाथ में लिए साक्षात् यमराज सदृश दीखने लगे, और नाना प्रकार के खोटे स्वप्न दिखाई देने लगे।

आज बड़े बड़े मल्लों की कुश्ती होगी इस हेतु रंग भूमि खूब सजाई गई थी, नाना प्रकार के बाजे बजते थे, चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशलादि मल्ल रंगभूमि में आये। भगवान् श्रीकृष्ण भी गाजे बाजे का शब्द सुन कर रंग भूमि देखने के लिए गए, मार्ग में कुवलयापीड़ हाथी खड़ा था, श्रीकृष्ण जी ने महावत से हाथी हटाने के लिए कहा, उसने कंस के इशारे से हाथी को श्रीकृष्ण जी के ऊपर हूल दिया। फिर क्या था जिस प्रकार गरुड़ जी सर्प को घसीटते हैं इसी प्रकार श्रीकृष्ण जी ने उसकी सूंड पकड़ कर खूब घसीटा, फिर बल पूर्वक पृथिवी में पटक दिया, उस के दांत उखाड़ लिए और उन दांतों से महावत की भली प्रकार से पूजा की।

इस के उपरान्त दोनों भाई रंगभूमि में पहुंचे उस समय श्रीकृष्ण जी वहां के मनुष्यों को अपने अपने भावानुसार:-

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः,
स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान्।
गोपानां स्वजनोऽसतांक्षितिभुजां,
शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराड विदुषां,
तत्वं परं योगिनां।
वृष्णिनां परदेवतेति विदितो,
रंगं गतः साग्रजः॥

मल्लों को मल्लों के समान, मनुष्यों को अत्यन्त सुन्दर, स्त्रियों को साक्षात् कामदेव स्वरूप, दुष्ट राजाओं को काल के समान, वसुदेव देवकी को पुत्र के समान, कंसको यमराज के समान, अज्ञानियों को भयंकर रूप, ज्ञानियों को परम तत्व रूप और

यादवों को परम देवता रूप दीखने लगे। तब कंस की आज्ञा से चाणूर ने श्रीकृष्ण को कुश्ती लड़ने के लिए आमन्त्रित किया। श्रीकृष्ण जी कहने लगे कि देखो हम बालक हैं इस लिए हम अपने समान बालकों से ही लड़ेंगे। चाणूर ने कहा नहीं तुम बालक नहीं हो तुमने हजार हाथियों का बल रखने वाला कुवलयापीड़ हाथी सहज ही में मार डाला, श्रीकृष्ण जी उन सब मल्लों की मृत्यु निकट आई जान रंग-भूमि में उतर पड़े, बलराम जी भी मुष्टिक से जा जुटे, दोनों जोटें अपना अपना दांव पेच करने लगीं सब के देखते ही देखते श्रीकृष्णजी ने चाणूर के दोनों हाथ पकड़ कर बड़े वेग से पृथिवी में पटक दिया, पड़ते ही चाणूर के प्राण पखेरू कूंच कर गए। बल-देव जी ने भी मुष्टिक को थाप मार कर गिरा दिया, इस प्रकार बारी बारी से सब मल्लों को दोनों भाइयों ने परम धाम में भेज दिया, कंस के नगाड़े बन्द हो गए, एक एक क्षण उसे प्रहर वत् प्रतीत होने लगा, डरते डरते आज्ञा दी कि कुटिलकर्मा इन दोनों भाइयों को पुर से बाहर निकाल दो, नन्द को बांध लो, गोपों को मारो, वसुदेव का शिरच्छेद कर दो और पिता उग्रसेन को शीघ्र अनुचरों सहित मार दो। जब कंस इस प्रकार बकने लगा तब भगवान् उसके केश पकड़ कर सिंहासन से नीचे घसीट लाये, कंस ने ढाल तलवार निकाल ली और इधर उधर छटपटाने लगा। श्रीकृष्ण जी ने कंस को पकड़ कर बल पूर्वक पटक दिया और निमेष गात्र में उस के प्राण पखेरू उड़ गए। कंस के मारे जाने पर सारी नगरी में आनन्द मंगल होने लगा, देवताओं ने पुष्प वृष्टि की और ऋषियों ने साधु साधु कहकर आशीर्वाद दिया। श्रीकृष्ण जी ने वसुदेव जी को बन्दी-खाने से छुड़ाया और उग्रसेन को यादवों का राजा बनाया, पश्चात् दोनों भाई नन्दराय जी के पास आए और उन से कुछ दिन मथुरा में ही रहने की आज्ञा मांग ली।

यद्यपि श्रीकृष्ण जी जगत् के ईश्वर थे और स्वतः सिद्ध निर्मल ज्ञान को मनुष्यों के समान चेष्टा करने के कारण गुप्त रखते थे इस लिए सांदीपनी गुरु के पास जाकर उन्होंने शुद्ध भक्ति भाव पूर्वक गुरु की सेवा की और थोड़े ही काल में सकल विद्या-निधान हो गये।

उद्धव का गोपियों के पास जाना।

मथुरा में रहते रहते श्रीकृष्ण जी को बहुत दिन हो गए थे। उन्होंने वृन्दावन वासी गोप गोपियों के दुःखों को दूर करने के लिए उद्धव जी के हाथ अपना सन्देश भेजा। श्रीकृष्ण जी का सन्देश लेकर उद्धवजी गोकुल में पहुंचे। उद्धव जी को आया हुवा देख कर नन्दराय जी बहुत प्रसन्न हुए और स्नेह से दोनों भाइयों का कुशलक्षेम पूछा। उद्धव जी कहने लगे कि हे नन्दराय जी! आप संसार में प्रशंसा के योग्य हैं, क्योंकि जो सब के गुरु नारायण हैं उनमें आपने बुद्धि लगाई है। यह कृष्ण बलदेव विश्व के उपादान कारण हैं, इसी से पुरुष प्रकृति रूप हैं, सब प्राणियों में प्रवेश करके अनेक प्रकार के ज्ञान के साक्षी और अनादि हैं। जब सबके आत्मा, कार्य और कारण से मनुष्य रूप धरे परिपूर्ण नारायण में आप की भक्ति है तो फिर आप को क्या करना शेष रहगया। हे नन्द जी! आप कृष्ण जी को सर्वदा अपने पास ही देखो क्योंकि जैसे काष्ठ में अग्नि रहती है उसी प्रकार सब प्राणियों के हृदय में श्रीकृष्ण

जी रहते हैं। उनको न कोई प्यारा है न कुप्यारा; न उत्तम है, न अधम; वह तो सम दृष्टि हैं, न उन के देह है और न उनका जन्म ही है, न उन के कोई कर्म ही लिप्तायमान हो सकते हैं, क्योंकि वह तो संसार में देव, मनुष्य, नृसिंहादि योनियों में साधु पुरुषों के दुःख विमोचन के लिए और धर्म की रक्षा के लिए अवतरित होते हैं। निर्गुण भगवान् सत्वादि तीन माया के गुणों को धारण करते हैं और निर्गुण से अलग अजन्मा भगवान् क्रीड़ा करके विश्वोत्पत्ति, पालन तथा संहार करते हैं। जैसे बालककी झांईमांई फिरते समय दृष्टि फिरती है और इससे उसे पृथिवी भी फिरती सी दिखाई देती है, इसी प्रकार चित्तजो कर्त्ता है उस में अहंकार रूपी झांई मांई से आत्मा भी कर्ता सा दिखाई देता है। यह भगवान् श्री कृष्ण जी तुम्हारे ही पुत्र नहीं हैं, वरन सब के पुत्र हैं. आत्मा हैं, पिता हैं, माता हैं और ईश्वर के ईश्वर हैं।

नन्दराय जी श्रीकृष्ण जी के ऐसे परम सुहावने अलौकिक गुण सुनकर बड़े प्रपन्न हुए जब गोपियों को पता लगा कि मथुरा से श्रीकृष्ण जी के भेजे हुए उनके सखा उद्धव जो आए हैं तब आनन्द में मग्न हुई हुई उद्धवजी के पास आईं, अश्रुधाराओं से विरहाग्नि की तपत को शान्त किया, फिर कृष्ण जी को अनेक प्रकार के तायने देकर कहने लगीं "हे उद्धव जी! जिस प्रकार प्रजा असमर्थ राजाको, पक्षी फल रहित वृक्ष को और अभ्यागत भोजन करके गृहको त्याग देता है इसी प्रकार श्रीकृष्ण हम को त्याग करके चले गए। अहो! इनकी तो प्रीत सर्वदा ऐसी ही रही है यह तो जब अयोध्या में रामचन्द्र हुए तब बधिक के समान बालि को मारा, उनके सुन्दर मुख पर रीझकर रावण की बहन आई तो लक्ष्मण को सिखाकर अबला के नाक कान काटे, वामन अवतार लेकर राजा बलि को ठगा अधिक क्या कहें हम तो काले की मित्रता से अघाय गई हैं, अब भूल कर भी काले से मित्रता नहीं करनी चाहिए। हे उद्धव जी! जब से श्रीकृष्ण जी मथुरा में गये हैं तब से हमारे तो मन, वाणी और देह गोविन्द में लगे हुए हैं अधिक क्या लौकिक व्यवहार खान पान सब छूटगये हैं। हे उद्धवजी! जिस प्रकार हम दिन रैन उनका स्मरण करती हैं उसी प्रकार कभी वह हम को भी याद किया करते हैं क्या? उद्धव जी गोपियों की भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र में ऐसी अनन्य प्रीति देख कर परम आश्चर्यान्वित हुए, और उनको श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाने लगे। उन्होंने कहा:-

हे गोपियो! तुमने वासुदेव में मन लगाया है इस लिए तुम निश्चय कृतार्थ होगई हो, क्योंकि दान तप, यज्ञादि सब सुकर्मों का फल यही है कि श्रीकृष्ण चन्द्र में भक्ति हो। भगवान् ने तुम्हारे सब के प्रति सन्देश भेजा है कि सब का उपादान कारण मैं हूं इस लिए तुम मुझ से दूर नहीं हो, जैसे आकाश, पवन, जल, पृथिवी, तेज यह पांच तत्व समस्त प्राणियों की देह में रहते हैं इसी प्रकार मैं भी भूतमात्र में व्यापक हूं। मन, बुद्धिः प्राण, इन्द्रिय और गुण इनका आश्रय हूं, अपने में अपने से अपने को उत्पन्न करता हूं और अपनी माया से सृष्टि की उत्पत्ति नाश और पालन करता हूं। जैसे जागत मनुष्य स्वप्न को झूठा जानता है इसी प्रकार पण्डित जन इस जगत् को झूठा जानते हैं। मनुष्य को अपना मन आलस्य त्याग कर रोकना चाहिए, जिस

का मन रुक जाता है वह कृतार्थ हो जाता है। वेद पढ़ने, अष्टांग योग साधने, अनात्म विचार का त्याग करने, इन्द्रियों के जीतने और सत्य बोलने से पुरुषों का मन रुकता है। सम्पूर्ण वृत्तियों का त्याग करके मन को मेरे अन्दर लगा कर मेरा नित्य ध्यान करने से तुम सब शीघ्र ही मुझको प्राप्त होगी"।

उद्धव द्वारा कहे गए श्रीकृष्ण के ऐसे सन्देश को सुन कर गोपियां दुःखी हुई उन्होंने ऊधोजी से कहा कि यह ज्ञान का उपदेश तो आप ही सीखें। हमें तो नदियें, पर्वत, गौ आदि सब उनके चरित्रों की याद दिलाते हैं। इस के पीछे सब गोपियें मथुरा की ओर हाथ उठा कर कहने लगीं "हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे गोविन्द! यह आप के नाम तो गायों का पालन करोगे तभी रहेंगे, इन्द्र के वर्षा करने पर आप ने कहा था कि मैं व्रज की रक्षा करूंगा, हे महाराज अब तो आप के विरह रूपी समुद्र में समस्त व्रज डूबा जारहा है, अब आप आकर शीघ्र अपने प्यारे व्रज का उद्धार क्यों नहीं करते हो"।

गोपियों की ऐसी अवर्णनीय भक्ति को देख कर उद्धव जी अवाक होगए, मुखसे शब्द न निकला नेत्रों से जल धारा बहने लगी, प्रेम से शरीर पुलकित होगया, मनही मनमें विचारने लगे कि अहो! इन गोपियों का पृथिवी पर जन्म सफल है, इन्होंने सब के आत्मा गोविन्द में अपने मन को लगाया हुवा है, योगी पुरुष सहस्रों जन्म योगाभ्यास करके जिनको को नहीं प्राप्त कर सकते, ब्रह्मा, विष्णु, महेश जिन की प्राप्ति के लिए उत्कण्ठित हैं उस शुद्ध ब्रह्मको इन गोपियों ने अनायास ही प्राप्त कर लिया।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां।
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्॥
यादुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा।
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

इन गोपियों के चरण रजका सेवन करने वाले वृन्दावन में गुल्म, लता, ओषधियां इन में से व्रज में मैं कोई भी होऊं तो ठीक है, क्योंकि इन्होंने अपने दुस्त्यज स्वजन और और धर्मको तज कर भगवान् को उस पदवीकी शरण ली है जिसको श्रुतियां भी ढूंढा करती हैं। मैं नन्द के व्रज की स्त्रियों की रजको बारम्बार नमस्कार करता हूं जिन गोपियोंकी गाई कथा तीनों लोकों को पवित्र करती है। इस प्रकार गोपियों की स्तुति से वाणी को पवित्र करते हुए उद्धव जी नन्दादि सब गोप गोपियों को प्रणाम करके पुनः मथुरा को चले गये। (अपूर्ण)

'भूमा'

प्रीति

पंक में प्रीति के कोउ न धसे रे ॥टेक॥
दीपक प्रीति से शलभ आप ने।
निर्भय प्राण नसे रे॥ १॥
मधुप प्रीति वश कमल जाल में।
सर्वस देय फंसे रे॥ २॥
हरिन प्रीति वश नाद श्रवण कर।
तनु सेल लसे रे॥ ३॥
चिरज प्रीति वश दरश बिना तव।
हिय में आग चसे रे॥ ४॥

व्रजकुमारी

श्रीमद्भगवद्गीता

[ले० श्री० पूज्य महादेवप्रसाद सरस्वती]

अथ द्वितीयोऽध्यायः

संजय उवाच

अश्रु दोऊ हगन पूरित व्याप्त करुणा से महा।
दुःखित अर्जुन देखि मधुसूदन वचन ऐसे कहा ॥

श्रीभगवानुवाच

मोह कित से भयउ अर्जुन तोहिं आये आपदा।
साधु नहि आचरत जैसे नरक औ अपयश प्रदा ॥
क्लीव जनि तू होसि अर्जुन तोहि नीक न लागई।
क्षुद्र उर की निबलता तजि परन्तप ! कि न जागई ॥

अर्जुनउवाच

केहि भांति मधुसूदन लड़ौं मैं धनुष बाण चढ़ाय के।
पूज्य भीषम द्रोण अरिसूदन कहो समुझाय के ॥४॥
बड़ आत्मा गुरु जनन कहं यह श्रेय वध नहिं कीजिये
यहि लोक में वर मांगि भिक्षा उदर निज भरि लीजिये
अर्थ लोलुप हो तऊ जो गुरु जनों को वध करे।
तिनके रुधिर के रंग रंगे भोग भोगन ही परे ॥६॥
जय हमारी होय अथवा वे मरें जीतें सही।
कल्याणकारी कौन इनमें यह समझ परती नहीं ॥७॥
मारि जिनको जियत रहने की नहीं इच्छा हमें।
सोइ कौरव खड़े सन्मुख युद्ध हित संग्राम में ॥ ८ ॥
नष्ट भयउ स्वभाव मेरो दीनता के दोष में।
मूढ़ मन मेरो भयो निज धर्म के पहिचान में ॥ ९ ॥
मैं तुम्हारो शिष्य पूछूं शरण तुम्हरी आय के।
कल्याण निश्चय होय जामें सो कहो समुझाय के ॥
राज्य निष्कंटक मही समृद्ध हू जो पावऊं।
त्रिदुध गण के स्वर्ग को स्वामी जदपि बनि जावऊं ॥
तदपि मोको एक साधन हू न ऐसो भासई।
इन्द्रियों को शुष्क करने हार यह दुःख नाशई ॥१३॥

संजय उवाच

शत्रुसंतापी कपिध्वज कृष्ण सों अस भाषिके।
युद्ध मैं नहिं करूंगो कहि बैठ रथ चुप लाय के ॥ १५
उभय सैना मध्य करत विषाद ताहि निहारि के।
हंसत से केशव कह्यो भारत ! सुनो चित लाय के ॥

श्रीभगवानुवाच

सोच करत अशोच्य जो हैं ज्ञान की बातें करैं।
प्राण रह हिं कि जाहिं ज्ञानी पुरुष शोच न उर धरैं
ऐसे तो है ही नहीं मैं तू तथा ये नृप सभी।
थे नहीं पहिले कि हम सब होयंगे आगे नहीं ॥ १६॥
बालपन यौवन जरा जिमी देह धारिहि आवहीं।
देह दूसर मिलन तैसे धीर मोह न पावहीं ॥ १७ ॥
इन्द्रिय विषय संयोग आतप शीत सुख औ दुःख प्रदा
अनित आवन जान हारे सहन करु भारत सदा ॥१८

बर श्रेष्ठ ज्ञानी मनुज जो इन में व्यथित होते नहीं ।
सुख दुःख जाहि समान दीखत अमर पद पाते वहीं ॥
असत की स्थिति न कबहू सत अभाव नहीं कदा ।
उभय अन्त विलोकि निर्णय तत्वदर्शी जन यदा ॥
व्याप्त कीन्हों अखिल जग यह ब्रह्म अविनाशी सोई ।
नाश अव्यय तत्व करने को नहीं समरथ कोई ॥
नाश रहित अचिन्त्य आतम देह स्वामी मानिये ।
नाशवान शरीर ताने युद्ध भारत ठानिये ॥
देहपति ! जो आत्मा को ही हतन हारा कहैं ।
ताहि मारो जात समझे दोऊ नहीं जानत अहै ॥
आत्मा न तु मारता है बध किया जाता नहीं ।
इस तरह जो जानने हैं जानते सोई सही ॥
आत्मा नहीं जन्म लेता मृत्यु नहि पाता कहीं ।
बहुरि होने का नहीं एकबार हो के सो नहीं ॥
अज नित्य शाश्वत औ पुरातन आत्मा को मानिये ।
देह बध होजाय तौहू ताहि हत नहिं जानिये ॥
अज नित्य अव्यय अमर जो नर आत्मा को जानहीं ।
सो पुरुष मारो जात कैसे मारता की अन्य ही ॥
जीर्ण वस्त्र उतारि नर जिमि नयो धारण कारई ।
जीर्ण तन तजि आत्मा तिमि तन नवीन हि धारई ॥
काटि सकत न शस्त्र याको पवन हू न सुखावई ।
जल गलाय न सकत या को अनल हि न सुकावई ॥
नहिं कटन हार न जलन हार न गलन सूखन हार है ।
सर्व गत स्थिर सनातन अचल नित्य अपार है ॥३०॥
अव्यक्त मन हू ते परे अविकार याहि बखानई ।
याहि यहि विधि जानि तुमको उचित शोक न मानई
नित्य जन्मत मरत नित्यहि याही जो तुम मान हू ।
महाबाहु न उचित तथपि शोक ताकर ठानहू ॥
जन्मता सो मरत निश्चय मरत सो जन्मै सही ।
अनिवार्य्यहिं तोहि ताते शोक नहीं करनो चहीं ॥
आदि में अव्यक्त सब ही व्यक्त मध्यहि अनुसरैं ।
मरत में अव्यक्त पुनि तहं शोक भारत क्यों करै॥३४
आश्चर्य्य वत यहि लखत कोउ आश्चर्य सरिस बखानई
आश्चर्य सरिस सुनन्त कोऊ तथपि न कोऊ जानई ॥
सकल तन में देह स्वामी सदा काल अवध्य है ।
तस्मात् कोउ प्राणी विषय तोहि सोचनो नहि उचित है
निज धर्म देखत हू तुझे इमि धैर्य त्यागन ना चहीं ।
धर्म युद्धहि छोड़ क्षत्रि हि अन्य श्रेयस्कर नहीं ॥३७
खुलो आपहि आप अर्जुन ! युद्ध स्वर्ग दुवार है ।
भाग्यशाली क्षत्रियों को ही मिलत असवार है ॥ ३८
निज धर्म के अनुकूल जो संग्राम यह तू ना करै ।
खोय अपनो धर्म कीरति पाप अपने सिर धरै । ३९
दुष्कीर्ति अक्षय तोरि जग में लोग सब निश्चय कहैं
अपकीर्ति सम्भावित पुरुष कहं मृत्यु से बढ़ कर अहैं
भजि गयो रण छोड़ि भय से तू महारथ मानि है ।
बहुमान्य जिनको आज तू है तोहि लघु कर जानिहै ॥
कहन चहियत बात जैसी कह हिं तोहि अनेक धा ॥
निन्दि हैं सामर्थ्य तेरी दुःखतर याते कहा ॥
बध भयेते स्वर्ग जैहै जीति राज्यहिं भोगिये ।
कौन्तेय अस जिय जानि उठ अब युद्ध निश्चय कीजिये
सुख दुःख लाभालाभ सम करि जय पराजय मानई ।
युद्ध में लगि जायगो तौ तोहि पाप न लागई ॥४५॥
यह सांख्य तोते कहेऊं अर्जुन बुद्धि योग सुनीजिये ।
जेहि बुद्धि से तू युक्त हो कर कर्म बंध हि त्यागिये ॥
इहां कर्मारम्भ कृत नहिं नशत विघ्न नहीं कदा ।
स्वल्प धर्माचरण हू रक्षत महा भय से सदा ॥४६॥
व्यवसाय बुद्धि एकाग्र करि अर्जुन इहां रखनी परै ।
जिन बुद्धि का निश्चय नहीं शाखा अनेकों सो धरै ॥
कर्म कांडात्मक वाणी वेद में भूले हुये ।
कुछ नहिं अतिरिक्त याके मूढ़ जन कहते हुये ॥ ४८॥

यों बढ़ा कर कहत कीन्हें कर्म विविध अनेक था।
जन्म रूपी फल तथा ऐश्वर्य भोग मिलै सदा ॥४९॥
स्वर्ग के पीछे पड़े बहु कामना रखते हुये।
वल्लिखित भाषण और तिनके मन खिचे होते हुये॥
ऐश्वर्य भोगासक्त तिनकी बुद्धि व्यवसायात्मिका।
पावत न कबहुं समाधि अथवा होत नहीं स्थिर कदा
त्रैगुण्यमय हैं वेद सब निर्गुण्य अर्जुन ह्वै रहो।
निर्योगक्षेम अद्वन्द सात्विक परम निष्ठावान हो॥
चहुं ओर जल ही जल भरा तब कूप ते कारज कहा
ब्रह्म जाने निष्प्रयोजन वेद हैं तैसे महा॥ ५३॥
कर्म करने मात्र का तेरे लिये अधिकार है।
कर्म फल मिलना न मिलना यह न तेरे हाथ है॥ ५४
चाहना फल राखि मन में कर्म को करना नहीं।
उरमें न करने कर्म का तू आग्रह धरना कहीं॥५५॥
आसक्ति तजि सम मानि सिद्धि असिद्धि अथवा होवई
योगस्थ ह्वै करु कर्म यह समताहि योग कहावई ५६
यहि बुद्धि योग से हे धनंजय! कर्म बहुत कनिष्ट है
बुद्धि के तू शरण जा फल कांक्षी नर नीच है॥५७॥
पाप पुण्य अलिप्त यहि जग बुद्धि युक्त रहावई।
तस्मात योग ही धार कौशल कर्म योग कहावई। ५८
सम बुद्धि युक्त मनुष्य ज्ञानी कर्म फल बिसराय के।
छूटि भव ते दुःख रहित पद तुरंत पहुंचें जाय के॥
जब बुद्धि तेरी मोह गन्दले आवरण से पार हो॥
सुनी अरु श्रोतव्य बातों से तभी निर्वेद हो॥ ६०॥
श्रुति वाक्यों से बुद्धि तेरी है जो घबड़ाई हुई।
होय अचल समाधि स्थिर योग तब तू पावई॥६१॥

भगवद्भक्ति

[ले० पूज्य श्री० भोले बाबा अनूपशहर]

भगवत् रस रूप हैं।

श्रीविक्रियासहस्राणां साक्षिणां निर्विकारिनम्।
सच्चिदानन्दमात्मानमखण्डैकरसं भजे॥

छप्पय

जे भगवत् रस खानि प्राणि उर अन्तर वासी।
सच्चित् आनंद राशि श्वास निश्वास प्रकाशी॥
शोक मोह भय भेद छेद निज भक्तन त्राता।
अर्थ धर्म कामादि देव दुर्लभ फल दाता॥
भोला! भूले मत तिन्हें पलपल मांहि संभार रे।
सोवत जागत स्वप्न में देव वही निर्धार रे॥

सं

सारामः गुरु जी! कल आप ने भक्तिमहारानी का स्वरूप बताया था और भक्तों की महिमा वर्णन की थी। आज मैं उन भगवत् का स्वरूप पूछना चाहता हूं, जिन की प्राप्ति भक्ति महारानी द्वारा होती है और जिन को प्राप्त करके भक्त की गणना भक्तों में होजाती है और भक्त ब्रह्मादि देवताओं का भी पूज्य हो जाता है। इस प्रश्न का उत्तर देने से प्रथम मेरी एक शंका का निवारण कर दीजिये। शंका यह है कि कल शाम को विवेकचन्द पंण्डित मुझ से इस प्रकार कहने लगे

"भाई मंसाराम ! तुम तो अभिमानी थे ही, अब तो तुम्हें गुरु भी अभिमानी मिल गए हैं, बस अब क्या है ? लोभी गुरु लालची चेला, दोनों नरक में ठेलम-ठेला"। भाई ! अभिमान-अहंकार ही तो अनर्थ की जड़ है, जब अहंकार ही न नष्ट हुवा तो भक्ति, ज्ञान वैराग्य खाक हुआ ! कुछ भी न हुआ ! तेली का बैल दिन भर घूमा, फिर भी वहीं का वहीं ! प्रथम अहंकार का त्याग करना चाहिए ! तब ही भक्ति ज्ञान हो सकते हैं"। हे भगवन ! इस शंका का क्या समाधान है-पण्डित जी का कथन मेरी समझ में तो ठीक ही है ! अहंकार ही तो चिज्जड़ ग्रंथि है, इस ग्रंथि के खोलने का उपाय अवश्य करना चाहिये, यह ही दुःख देने वाली और जीव को नाना योनियों में भटकाने वाली है ! इसके खोलने के लिए ही भक्ति आदि साधन हैं।

मस्तराम: भाई मन्साराम ! पण्डित जी का कथन तो ठीक ही है परन्तु भक्त लोगों का अहंकार भक्तों का नहीं होता, उनका अहंकार तो भगवन् ही का अहंकार होता है ! भक्त तो अपना सर्वस्व भगवन्के अर्पण कर देते हैं, जब सर्वस्व ही अर्पण कर दिया तो अहंकार कहां रहा ? भक्त के सब व्यापार भगवन् प्रीति के अर्थ होते हैं, भक्त अपने लिए कोई व्यापार नहीं करता ! भक्त का यह निश्चय होता है 'भगवन् सब जगत् के स्वामी हैं, मेरे भी स्वामी हैं, मैं उनका भृत्य हूं, जैसी भगवन् की आज्ञा होती है, वैसा ही मैं करता हूं, मेरा कोई कार्य नहीं है, सब भगवन् के कार्य हैं, भगवन् ही कर्ता धर्ता हैं, मैं तो उनका उपकरण यानी औजार हूं। ऐसा समझने से भक्त को किसी देवता आदि से भय नहीं होता क्योंकि सब देवता परमात्मा के ही चाकर हैं, जो अपना अभिमान करता है, उसके कार्य में देवता विघ्न करते हैं और जो अपना अभिमान नहीं करता, भगवन् का ही सब को और अपने को समझता है, उसको किसी प्रकार का भय नहीं होता। सारांश यह है कि विषय सम्बन्धी अहंकार हानिकारक है और भगवन् सम्बन्धी अहंकार तो भक्ति में मदद रूप है। ऐसे अहंकार बिना भक्ति नहीं हो सकती। याज्ञवल्क्य ने इसी अहंकार को ग्रहण करके भारद्वाज को रामायण सुनाई थी, इसी अहंकार को ले कर शिवजी ने पार्वती को, काग भुशुंडि ने गरुड़ को और गोसाईं जी ने अपने शिष्यों को रामायण की कथा सुनाई थी। जो कोई ब्रह्मनिष्ट अपने शिष्य को उपदेश करता है, इसी अहंकार को लेकर करता है, बिना अहंकार उपदेश नहीं दिया जा सकता। यह भुने बीज के समान होता है। जैसे भुना बीज अंकुर उत्पन्न करने को समर्थ नहीं होता, भूख की निवृत्ति कर सकता है इसी प्रकार भक्तों का अहंकार संसार रूप अनर्थ का कारण नहीं होता, भक्तोंके चरित्र, भगवन् के गुणानुवाद और भगवन् तत्व के निरूपण करने में समर्थ होता है इसी लिये यह शंका कभी न करनी चाहिए कि भगवद्भक्तों में अहंकार है, उनका अहंकार आभास मात्र होता है, प्रारब्ध भोगमात्र अथवा दूसरों के हित निमित्त होता है। ऐसा न होता तो भक्ति आदि कल्याण मार्ग का प्रचार होना ही असम्भव था। भाई मन्साराम ! हमारी दृष्टि में सिवाय भगवन् के दूसरा है नहीं, पण्डित जी का कथन भगवन् की आज्ञा ही समझनी चाहिये, यदि अहंकार नहीं मिटा है तो भगवन् गुणगान से मिटाना चाहिए, यह हम को दृढ़ विश्वास है कि भगवन् गुणगान करने से अहंकार ऐसे उड़ जायगा जैसे गधे के शिर पर से

सींग! अच्छा! सुनो, अब भगवन् का स्वरूप, भगवन् रस रूप है।

संसाराम:--महाराज! भगवन का रस नाम तो आज तक सुनने में नहीं आया। शून्यवादी तो भगवन को शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी विज्ञान कहते हैं, सांख्य वाले पुरुष कहते हैं, योगी ईश्वर कहते हैं, शैव शिव कहते हैं, कालवादी काल कहते हैं, सौरि सूर्य कहते हैं, गाणपत्य गणपति कहते हैं, शाक्तिक शक्ति कहते हैं, वैष्णव विष्णु कहते हैं, और वेद में 'प्रज्ञानमानन्दं' ब्रह्म कहा है। आप रसरूप कहते हैं। क्या आपने किसी कोष में यह नाम सुना है, किसी लुगत में अथवा किसी डिक्शनरी में देखा है।

मस्तराम:--भाई संसाराम! तुम्हारे तो पर निकल आये हैं! जब चींटी मरने को होती है तब उसके पर निकल आते हैं, तुम भी अब मरने को हुये दीखते हो! मन के मरण को श्रुतिमें मन का महान् अभ्युदय कहा है, तुम्हारी और मन की एक राशि है, तुम्हारा भी महान अभ्युदय होने वाला दीखता है! जल्दी क्यों करते हो बीच में ही से बात क्यों काटने लगते हो। पूरी बात तो सुन लिया करो, तभी बोला करो, देखो! भक्तिका मर्म-रहस्य जानने वालों ने रस संयुक्त भक्ति की है, भक्तमाल में पांच रस भगवद्भक्ति के संयोगी लिखे हैं, रस शब्द में सब कोषों का कोष वेद ही प्रमाण है। श्रुति भगवती कहती है, 'जरायुज अंडज, स्वेदज और उद्भिज्ज, इन चार प्रकार के भूतों का-प्राणियों का पृथिवी रस है, पृथिवी का रस जल है, जल का रस औषधियां हैं, औषधियों का पुरुष रस है, पुरुष की वाणी रस है, वाणी का रस ऋग्वेद है, ऋग्वेद का रस सामवेद है, सामवेद का रस उद्गीथ है, यह उद्गीथ ही रसों में रसतम है यानी रसों का भी रस है। (छान्दो० १ ३, ३) यहां उद्गीथ भगवन् का ही नाम है। भगवन् का अपरोक्ष प्रत्यक्ष कोई नाम नहीं हैं, सब नाम लक्षणा वृत्ति से भगवन् का लक्ष कराते हैं। भगवन् में जगत् का अभाव होने से शून्यवादी भगवन् को शून्य कहते हैं। विज्ञान रूप बुद्धि की वृद्धि से भगवन् का साक्षात्कार होता है इसलिये विज्ञानवादी भगवन् को विज्ञान कहते हैं। भगवन् सब में पूर्ण है इसलिये सांख्यवादी भगवन् को पुरुष कहते हैं। सब का नियामक होने से योगी भगवन् को ईश्वर कहते हैं, कल्याण करने वाला अथवा कल्याण रूप होने से शैव भगवन् को शिव कहते हैं, काल की गणना भगवन् बिना नहीं हो सकती इसलिये काल का भी काल होने से कालवादी भगवन् को काल कहते हैं। सब का प्रकाशक होनेसे सौरि भगवन् को सूर्य कहते हैं, सर्व समुदाय यानी समूह की सिद्धि भगवन् से होती है इसलिये गाणपत्य भगवन् को गणपति कहते हैं, सर्वशक्तिमान् होने से शाक्त भगवन् को शक्ति कहते हैं, सर्व में व्यापक होनेसे वैष्णव भगवन् को विष्णु कहते हैं। तीन काल के परिच्छेद से रहित ज्ञान स्वरूप होने से भगवन् को वेद में प्रज्ञान कहा है, सब सुखों का परमास्पद होने से आनन्द कहा है और वृहत होने से ब्रह्म कहा है। रस भगवन् स्वरूप है, भक्तमाल में रस की परिभाषा इस प्रकार की है यानी रस का स्वरूप यह है:-एकाग्र चित्त की वृत्ति जिस आनन्द में स्वादको चख कर सुख में डूब कर बेसुध हो जाय, उस का नाम रस है। तात्पर्य यह है कि सच्चिदानन्दघन परब्रह्म अपने स्वामी के जिस स्वरूप का ध्यान द्वारा साक्षात्कार हुआ है उस स्वरूप में चित्त की वृत्ति

दृढ हो जाय, वह रस है। रस का दूसरा अर्थ यह है: शृंगार, वात्सल्य अथवा सख्यादिरसों की सामग्री से भक्तों के हृदय में भगवन् के स्वरूप का जो प्रत्यक्ष होता है और उस स्वरूप में चित्त वृत्ति दृढ़ हो जाती है, उसको रस कहते हैं। कई रस भेद के वर्णन करने वालों ने जिस स्वरूप का हृदय में साक्षात्कार होता है, उसका नाम भाव अथवा प्रेम लिखा है और उस भाव अथवा प्रेम में चित्त की वृत्ति दृढ़ हो जाने को रस निश्चय किया है। यह रस एक व्यापक, पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द घन है, भिन्न२ उपकरणों द्वारा प्रकट होने के कारण एक ही रस के पृथक् २ नाम होगये हैं, वास्तव में रस एक और व्यापक है जैसे एकही मिट्टी से कई प्रकार के घट अलग २ नाम और स्वरूप वाले बन जाते हैं किंतु मिट्टी सब में एक ही और व्यापक होती है, जैसे पानी में जैसा रंग मिलाया जाय वैसे ही रंग का दिखलाई देने लगता है, किंतु पानी का रंग एक ही प्रकार का होता है इस प्रकार रस एक होते हुये भी जहां सुन्दरता, आभूषण, सुकुमारता आदि उपकरण सहित प्रत्यक्ष होताहै,वहां शृंगार रस कहलाता है, जहां शूरता, बल, शस्त्र उत्साह आदि उपकरण सहित प्रकट होता है, वहां उसको वीर रस कहते हैं। इसी प्रकार वात्सल्य और सख्य अन्य उपकरण हैं, उनके साथ वह ही रस उन रसों के नाम से पुकारा जाता है। तात्पर्य यह है कि रस एक है, उपकरणों के भेद से रस के अनेक नाम हो गये हैं।

संसाराम: महाराज ! प्रथम तो आपने चित्त की दृढ वृत्ति को रस कहा और फिर उसको व्यापक पूर्ण सच्चिदानन्दघन कहा इन दोनों में कौन सा स्वरूप यथार्थ है। चित्त की वृत्ति व्यापक नहीं होती क्षणिक होती है, उसको व्यापक रस कहना नहीं बनता।

मस्तराम: -भाई बात यह है कि जैसे जीव का भोजन जीव का जीवन कहने में आता है, वास्तव में भोजन जीव का जीवन नहीं है किंतु जीवन का उपकरण है, उपकरण होने से जीवन कहलाता है इसी प्रकार चित्त की दृढ़वृत्ति रस की उपकरण है इसलिये उसको रस कहा जाता है, वास्तव में वृत्ति रस नहीं है। रसों की संख्या मानने में शास्त्रों में परस्पर विरोध है। शृंगार उपासक कहते हैं कि आनन्द स्वरूप केवल शृंगार से प्राप्त होता है, दूसरे रस व्यर्थ हैं, यह उनका कथन समीचीन नहीं है क्योंकि यदि आनन्द का कारण शृंगार ही होवे तो व्याघ्र, भेड़े, गजादि की लड़ाई देखने से आनन्द न होना चाहिये क्यों कि लड़ाई आदि से शृंगार का संबंध नहीं है और उपरोक्त खेलों में आनन्द होना सब के अनुभव सिद्ध है इस लिये एक शृंगार ही आनन्द उत्पन्न करने वाला हो, यह ठीक नहीं है, कोष शास्त्र में आठ रस कहे हैं, शान्त रसका वर्णन नहीं किया। उपनिषदों में शांत रस को मूल बताया है और दूसरे रसों को शांत रस की शाखा वर्णन किया है साहित्य शास्त्र प्रेम, काव्य और रस भेद का प्रतिपादन करने वाला है, उसमें नौ रस वर्णन किये हैं। उनके नाम यह हैं: शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक बीभत्स, अद्भुत और शांत। भगवत् उपासकोंको किसी से विरोध नहीं है किंतु उपासना के योग्य होने से इन नौ रसों में से शृंगार और शांत दो रस ग्रहण करते हैं और इनसे भिन्न सख्य, दास्य और वात्सल्य तीन रस और लेते हैं, इस प्रकार पांच रस अंगीकार करते हैं यद्यपि भगवत् का चिंत-

बन सब ही रसों के अवलम्ब से हो सक्ता है क्योंकि भगवन् सब रसों में व्यापक है फिर भी इन पांच रसों से भगवन् की जितनी प्राप्ति शीघ्र होती है, अन्य रसों से उतनी शीघ्र नहीं होती इसलिये पांच रसों की विशेषता है। उपरोक्त रसों में रौद्र, भयानक और बीभत्स इन तीन रसों से कोई उपासना नहीं करता, हिरण्यकशिपु, रावण और कंसादि का भगवान् ने इन रूपों द्वारा उद्धार किया था, इस हेतु से उन की गणना रसों में की जाती है। सिद्धांत यह है कि उपासना के संबंधी पांच रस हैं। कोई पुरुष किसी भाव से किसी प्रकार से, किसी विश्वास से, किसी रीति से, और किसी निष्ठा से भगवन् का आराधन करे, रस से भिन्न आराधन नहीं होता सब रसों के रस रूप भगवन् सब में व्यापक हैं इस लिये भगवन् रस रूप हैं, यह सिद्ध हुआ।

संसाराम:-महाराज! भगवन् रस रूप हैं और सर्वत्र व्यापक हैं तो सर्बत्र दिखाई क्यों नहीं देते?

मस्तराम:-भाई आंखों वालों को भगवन् सर्वत्र दिखाई देते हैं, अंधों को दिखाई नहीं देते! सूर्य नारायण सब को प्रत्यक्ष हैं, फिर भी घुग्घु को नहीं दिखाई देते इसी प्रकार जिनके हृदय नेत्र खुले होते हैं उन्हीं को भगवन् का दर्शन होता है, दूसरे को नहीं होता। जैसी वस्तु देखनी होती है, उस वस्तुको देखने के लिये वैसा ही बनना पड़ता है, यह नियम है। हाथी के देखने को हाथी बनना पड़ता है और चेंटी के देखने को चेंटी बनना पड़ता है, तभी उनको देख सक्ते हैं। अभी तू भक्ति महारानी की पाठशाला में भरती हुआ है जब कुछ दिन यहां पढ़ लेगा तब तेरी आंखें खुलेंगी और तभी तू भगवन् को देख सकेगा! जब दीर्घ काल तक भक्ति पाठशाला के आचार्यों की सेवा निष्कपट होकर करेगा तब तेरी आंखों का जाला कटेगा! यदि तू निष्कपट हो जाय तब तो आंखें खुलने में देर न लगे, परंतु दीर्घ काल से तुझे कपट का अभ्यास हो रहा है, इसलिये जल्दी से उसका त्याग नहीं हो सकता। प्राचीन काल में एक पांखडी पुरुष था। उसने बहुत से ग्रन्थ पढ़ लिये, साधुओं का संग भी करता था परन्तु था कपटी, इसलिये साधु संग करने पर भी उसको भगवन् का साक्षात्कार नहीं हुआ था। एक दिन एक संत भगवन् तत्व का प्रवचन कर रहे थे जब उन्होंने भगवन् को सर्वत्र व्यापक कहा तब पाखंडी पुरुष ने तेरा ही सा प्रश्न किया।

पाखंडी:-महाराज! आप भगवन् को व्यापक बताते हो, मुझे तो इतने दिन आपके पास आते हो गये, अभी तक मुझे भगवन् नहीं दीखते! तब संत कहने लगे:

संत:-भाई! लोक में देखने की यह रीति है कि आंखों से तो वस्तु यथार्थ दीखती है, यदि ऐनक लगा कर देखें तो ऐनक के अनुसार वस्तु दिखाई पड़ती है और यदि आंखों पर पट्टी अथवा कोल्हू के बैल की सी अंधेरी लगा कर देखें तो कुछ भी दिखाई नहीं देता, इसी प्रकार तू ने आंखों पर अंधेरी लगा रक्खी है और जब कभी अंधेरी उतार देता है तो नई नई ऐनक लगा लेता है इसलिये सर्वत्र भगवन को तू नहीं देख सक्ता।

पाखंडी: महाराज! अंधेरी क्या है और ऐनक क्या है? कृपा करके समझाइये!

संत:-देख अहंकार बल और दर्प ये तीनों अंधेरी हैं और काम, क्रोध और परिग्रह ये तीनों ऐनकें हैं। अहंकारादि रूप अंधेरी से तेरी आंखें मिच

जाती हैं और कामादि ऐनकों से तुझे कुछ का कुछ सुझाई देता है इसलिये भगवन् जो समीप से समीप हैं, तुझे दिखाई नहीं देते ! कुल, जाति, धन, ऐश्वर्य विद्या आदि के अभिमान ने तुझे अंधा कर दिया है, अपने को कुलीन समझता है, दूसरों को हीन कुल वाला मानता है, मेरे कुल में बड़े बड़े धर्मात्मा, तपस्वी, दानी होगये हैं, उन्हीं के कुल में मैं हूं, फिर मेरे समान कौन उत्तम कुल वाला है, ऐसा अभिमान करता है। मैं ब्राह्मण हूं, अन्य सब मुझ से नीचे हैं, मैं ऋषि मुनि की संतान हूं, मेरे समान दूसरा कौन है, ऐसे जाति का अभिमान करता है ! मेरे समान धनीकोई नहीं है, धन से मैं सब कुछ कर सकता हूं, यज्ञ कर सकता हूं, दान दे सकता हूं, धर्मशालायें बनवा चुका हूं, क्षेत्र लगा रक्खे हैं, पाठशालायें खोल रक्खी हैं जो चाहूं सो ही कर सकता हूं, मैं ही धनी हूं, अच्छे अच्छे महात्मा मेरे घर पर ही आजाते हैं, मुझे किसी के पास जाने की ज़रूरत नहीं है, इस प्रकार सर्वदा धन का अभिमान किया करता है ! छप्पन गांव का ठाकुर हूं, सरकार में लाख रुपये से भी अधिक सालाना दिया करता हूं, राय बहादुर की उपाधि मिली हुई है, लाटसाहब आदि मेरे घर पर आते रहते हैं, हजारों रुपये इन की आवभगत में लगा देता हूं, जिस को चाहूं ग्राम में रहने दूं, चाहूं जिसे बाहर कर दूं, सब मेरे अधिकार में हैं, इस प्रकार ऐश्वर्य का अभिमान रखता है ! विद्या का पूरा अभिमानी है, प्रस्थानत्रय कंठ हैं, ये ही मुख्य हैं, इनके सिवाय अन्य शास्त्र, पुराणादि भी जानता हूं, कोई बात मुझे जाननी शेष नहीं है, व्याकरण का पूरा पंडित हूं, न्याय भी जानता हूं, गुण द्रव्य आदि लक्षण प्रमाण सहित जानता हूं, इस प्रकार विद्या का अभिमानी है, बली अपने समान किसी को नहीं समझता ! दर्प इतना है कि धर्माधर्म का भी विचार नहीं करता ! मेरे पास बहुत दिनों से आता है, सो भी दिखाने के लिये आता है, सच्चे मन से नहीं आता, इसी से तू अन्धा हो रहा है, सर्वव्यापी भगवन् को नहीं देख सकता। वासना के कारण वस्तु कुछ की कुछ दिखाई देती है। अनित्य को नित्य देखता है, अशुचि को शुचि मानता है दुःख को सुख मानता है और अनात्मा को आत्मा जानता है। स्वर्गादि अनित्य हैं फिर भी उनको नित्य मानता है, मांसादि के बने हुये अपवित्र शरीर को पवित्र समझता है, विषय भोग दुःख रूप हैं, उनको सुखरूप मानता है, देहादि अनात्मा को आत्मा मानता है, क्रोध के कारण कुछ का कुछ दीखता है, गुरु शास्त्र, माता पिता जो हित करते हैं, वे ही अहितकर दिखाई देते हैं, क्रोध भी तुझ में अत्यंत है, बात बात में क्रोध करता है। परिग्रह का भी तूने त्याग नहीं किया है, त्याग कैसा ! उलटा बढ़ा रक्खा है, अच्छा मकान हो, अच्छा भोजन हो, बाग हों, बगीचे हों, इत्यादि वस्तुओं की इच्छायें किया करता है, जो वस्तु मुफ्त की मिल जाय, ले लेता है, काम की है या नहीं, यह नहीं सोचता ! जो इस प्रकार आंखें बन्द रखता हो अथवा नई नई ऐनकें लगाले, उसे परमार्थ तत्व रूप भगवन् किस प्रकार दिखाई दें। भगवान् तो उसको दिखाई देते हैं जो अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह का त्याग करे ममता रहित और शांत हो, किसी वस्तु को अपनी न माने, सब वस्तुयें ईश्वर की जाने, किसी वस्तु को देख कर मन में क्षोभ न आवे, इस प्रकार शांत हो वह ही पुरुष ब्रह्म का साक्षात्कार करने के योग्य होता है, यह ही बात

भगवान ने गीता में कही है

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं, परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्म भूयाय कल्पते ॥

जिसके मन में संसार की कामनायें भरी हुई हैं, ऊपर से लोकों के दिखाने के लिये भक्ति का ढोंग रचता है, कपट सहित साधु महात्माओं का संग करता है, उस को करोड़ों जन्म तक भी भगवन् के दर्शन और भगवन् प्राप्ति की आशा नहीं है ! जो निष्कपट होकर साधु संग करता है, जो संसार में आसक्त नहीं होता भगवन् प्राप्ति की जिस को उत्कट इच्छा होती है, उसी को भगवन् के दर्शन होते हैं। भाई ! यदि तुम्हें भगवन् प्राप्ति की इच्छा हो तो संसार से वैराग्य करो सच्चे मन से साधुओं का संग करो, सच्चे प्रेम से ईश्वर का आराधन करो, ईश्वर की प्राप्ति तुम को अवश्य होगी ! ईश्वर कहीं दूर नहीं है, पास से भी पास है, सच्चे प्रेम की आवश्यकता है, जहां सच्चा प्रेम किया और भगवन् प्रकट हुये।

पाखंडी था संस्कारी, कुलीन और विद्यावान भी था ही, सन्त के यथार्थ वचन सुन कर उसका हृदय स्वच्छ होगया, उसने अपनी भूल स्वीकार की, आगे छल छिद्र त्याग कर पूर्ण भाव से सत्संग और ईश्वर आराधन करके अन्त में कृतकृत्य हुआ।

हे मन्साराम ! भगवन् तत्व बहुत सूक्ष्म है, जल्दी से भगवन् का साक्षात्कार नहीं होता, अभी तुम पाठशाला में दाखिल हुये हो, कुछ दिन सत्संग करो, भगवद्भक्तों के चरित्र सुनो, उनकी रहनि सहनि सीखो, विषय भोग की इच्छा का त्याग करो, इन्द्रियों को वश में करो, मन को भगवन् ध्यान में अथवा भगवन् चरित्रों में लगाओ, काम क्रोधादि का त्याग करो, शांति संतोष वैराग्यादि ग्रहण करो, तुम को भगवन् का दर्शन अवश्य होगा। देखो भगवन् सर्व व्यापक हैं तो भी उन का साक्षात्कार प्रथम हृदय में ही होता है। इसलिये तुम पहिले मन की वृत्तियों को सर्व विषयों में से रोक कर भगवदाकार करने का प्रयत्न करो ! जब एक भगवन् आकार वृत्ति हो जायगी फिर तो बिना यत्न ही घट के समान भगवन् सर्वत्र प्रत्यक्ष दिखाई देंगे। भगवद्भक्तों ने जिन जिन निष्ठाओं द्वारा भगवद्भक्ति की है, वे सब निष्ठायें मैं तुम को सुनाऊंगा, जिन को सुन कर तुम को भगवन् भक्ति का रहस्य मालूम हो जायगा और भक्ति महारानी की कृपा से भगवन् का दर्शन अवश्य होगा। अस्तु देखो ! भगवान् से प्रातःकाल उठते ही यह प्रार्थना किया कर हे जगदीश्वर ! हे ! परमेश्वर. हमारे चित्त का मल दूर करके हमारा चित्त निर्मल कर दीजिये, राग, द्वेष, असूया, मद मत्सरतादि दोष हमारे चित्त में से दूर होजांय और शान्ति, संतोष, धीरता, वीरता, उदारता, गंभीरता आदि उत्तम गुणों से हमारा चित्त पूर्ण हो जाय ! सदा निष्काम होकर हम आप का अर्चन वन्दन किया करें, दिन प्रति दिन संसार की आस्था कम होती जाय और आप में हमारी आस्था दिन दूनी रात चौगनी बढ़े। हमारे मन बुद्धि, इन्द्रिय आदि के सब व्यापार आप की प्रीति निमित्त हों ! हे अंतर्यामी भगवन् ! हमारे हृदय में शीघ्र आप का आविर्भाव हो, यह ही अंतिम प्रार्थना है।

दोः—नवों रसों में पूर्णजे, भगवत् एक अखंड ।
भोला भजि सो अहर्निश, छांदि कपट पाखंड ॥

भजन

लगोरे मोहि नाम निरञ्जन प्यारा ।
रसना कैसे न भजे तू हरि पद अघनाशक ओंकारा॥
अति दुर्लभ मानव शरीर यह मिलही न बारम्बारा ।
है प्रभु वही सृष्टि का कर्ता है वही पालन हारा ॥३॥
जन्म मरण से रहित अमित गुण बुद्धि विद्या भंडारा
उसे त्याग सुख चहत मन्दमति सो अति मुग्ध गंवारा
करत सदा दीनन पर दाया है सोई नाथ हमारा ॥ ६
औघट घाट नाव मेरी उरझी, सूझत नहीं किनारा॥•
तुम्हीं नाथ अब पार लगाओ, नहीं तो डूबत है मझधारा
कहत 'पलन्दर' हमहि उबारो, हे प्रभु अधम उधारा॥

२

बीत गये दिन भजन बिनारे ॥ टेक ॥
बाल अवस्था खेल गंवायो,
जब ज्वानी तब मान कियारे ।
लाहे कारण मूल गंवायो,
अजहुं न मिटी तेरी मन की तृष्णारे ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
पार उतर गये सन्त जना रे ॥ ३ ॥

३

प्रभु जी तू मेरे प्राण आधारे ॥ टेक ॥
नमस्कार दण्डोत बन्दना, अनेक बार जाऊं बारे ॥१
ऊठत बैठत सोवत जागत, यह मन तुझे चितारे ॥
सुख दुख ये सब मनकी व्याधा, तेरेही आगे पुकारे ३
मेरी ओट बल बुद्धि धन, तुम हो मेरे परिवारे ॥४॥
जो तुम करो सोइ भला हमारा, पेखि २ नानक शरना रे

४

दोउ कर जोड़ विनय करूं तोरे ।
सब अपराध क्षमा करो मोरे ॥टेक॥
मैं छलिया कपटी अति कामी ।
तुम हो पतित उद्धारक नामी ॥ १ ॥
तुम्हें छोड़ किस द्वारे जावें !
मन की विथा हम किसे सुनावें ॥ २ ॥
हम सेवक हैं अनुगत बालक ।
तुम स्वामी रक्षक प्रति पालक ॥ ३ ॥
आन गिरे हम शरण तिहारी ।
जन्म मरण का है दुःख भारी ॥ ४ ॥
विनय करें प्रति दिन उठ प्राता ।
हमको कंठ लगाओ ताता ॥ ५ ॥
हे मङ्गल मय मङ्गल दाता ।
तुम हो मात पिता मम भ्राता ॥ ६ ॥
चारों पदार्थ आप ही दीजे ।
दर दर का नहीं भिक्षुक कीजे ॥ ७ ॥

४

इस ओंकार अक्षरका, सद्गुरु ने भेद बताया ॥ टेक
सत्य ब्रह्म श्री ओंकार है.
अजर अमर अद्भुत अपार है ।
सर्व व्यापक सर्वाधार है,
नेति २ कर गया ।
जब होगया वास अमर का ॥ १ ॥
अकार उकार मकार मिला कर,
विश्व तेज विराट दिखा कर ।
आदि सृष्टि सब जगत् रचा कर.
भेद किन्ही ने न पाया ।
वह स्वामी है घर २ का ॥ २ ॥

चार वेद उप वेद इसी से,
व्याकरण पद छन्द इसी से।
उत्पत्ति प्रलय भेद इसी से,
मूल मंत्र कहलाया।
है परम प्रिय ईश्वर का ॥ ३ ॥
परम मोक्ष का है दाता यह,
सब नामों से विख्याता यह।
खासी हित चित से गाता यह,
और ना दूजा आया।
स्वामी सब नर नारी का ॥ ४ ॥

६

समझ मन जन्म जात ज्यों रेल ।।टेक ॥

सीधी सड़क बनी दुःख सुख की, कांत कराल डकेल
बरस २ का है स्टेशन मास मास ज्यों मील।
रात दिना दोऊ इंजन खींचत, ना घोड़ा न बैल ॥
नर शरीर उत्तम है गाड़ी चले छबीले छैल।
परम ज्योति सोई लालटैन है, बिन बाती बिन तेल ॥
ओं शब्द होत निशवासर, ज्यों लांघत कुल शैल।
नाड़ि तार की खबर देत है दशों दिशा रही फैल ॥
काहू ने टिकट लिया सुर पुर का, काहूने यमपुर गैल
विश्वानन्द राम बल धारी, देखत है सब सैल ॥

७

भोर भयो पक्षिगण बोले,
उठो अब हरिगुण गाओ रे ॥
लखि प्रभात प्रकृति की शोभा, बार २ हर्षाओ रे ॥
प्रभुकी दया सुमर निज मनमें, सरलस्वभाव उपजाओ रे
हो कृतज्ञ प्रेम में उनके, नैनन नीर बहाओ रे।
ब्रह्म रूप सागर में मन को, बारम्बार डुबाओ रे ॥
निर्मल शीतल लहरें लेले, आत्म ताप बुझाओ रे।

८

कर कृपा पार उतारियो मेरी टूटी सी किश्ती है ।टेक
तुम अविनाशी अजर अमर हो,
सारे भूमंडल के घर हो।
सब के भीतर अरु बाहिर हो,
कारीगर बड़े भारी हो ॥
रची अजब सकल सृष्टि है ॥ १ ॥
सबका न्याय करो तुम न्याई,
बिन वजीर अरु बिना सिपाही।
करो फैसला कलम न स्याही,
ऐसे न्यायकारी हो।
नहीं गलती पड़ सकती है ॥ २ ॥
हमने दुःख भोगे हैं भारी,
बहुत हुई दुर्दशा हमारी।
अब हम आये शरण तुम्हारी,
तुम लग मेरी दौड़ है।
तारो तो तर सकती है ॥ ३ ॥
बिन कृपा करुणानिधि तेरी,
कुछ नहीं पार बसाती मेरी।
कहे तेजसिंह भारत की बेड़ी,
काट सभी दुःख टारियो।
जो हृदय कुमति बसती है ॥ ४ ॥

भक्ति के नियम

१. भगवान की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९ पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. भगवद्वचन		१६९
२. प्रार्थना		१७२
३. गीता सुनकर अर्जुनने क्या किया [ले० श्री० पं० गंगाप्रसाद जी अग्नि होत्री]		१७३
४. कुछ नहीं [ले० श्री० आनन्दीप्रसाद निर्द्वन्द्व		१७६
५. भगवद्भक्ति किस प्रकार करनी चाहिये। [ले० श्री० पूज्य भोले बाबा]		१७७
६. खोज [ले० श्री० हरिकृष्ण जी दिल्ली]		१८४
७. श्रीकृष्ण चरित्र [ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी		१८७
८. प्रीति (कविता) [ले० श्री० ब्रजकुमारी		१९०
९. श्रीभगवद्गीता [ले० श्री० पूज्य महादेव सरस्वती		१९१
१०. भगवद्भक्ति [ले० पूज्य श्रीभोले बाबा		१९३
११. भजन		२०७

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।

भक्ति के संरक्षक

राय बहादुर ला० सेवकराम जी एम. एल. सी, बार-ऐट-लॉ लाहौर	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला	१०१)
श्रीमान भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
म० शोभाराम जी डूंगरवास	,,
चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी	,,
राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास	,,
बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज पटना	,,
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	,,
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली	,,
चौ० नेतराम साहब गिरदावर हलका जाटूसाना जिला गुड़गांवा	,,
बक्शी चाननशाह एम. ए. एल. एल. बी. इन्कम्टैक्स आफीसर जालंधर	,,
पं० मूलचन्द जी शर्मा (डहीना निवासी) अकाउण्टैन्ट हेड आफिस जयपुर	,,
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।	,,
राजा रूपसिंह जी रईस जिहाज़गढ़।	,,
पं० गोपीनाथ जी [बिहाली निवासी] मालिक फार्म काशीनाथ बच्चूमल गली परांवठा दिल्ली	,,
श्रीमती खुशालदेवी धर्मपत्नी चौ० नवलसिंह जी कोसली।	,,
सेठ शिम्भुदयाल जी बीकानेर	,,
चौ० रामजीलाल जी धवाना, हांसी	,,
चौ० चन्दनसिंह जी कप्तान दतिया राज्य	,,
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्बा	,,
ला० दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	,,
लक्ष्मी देवी खोसल धर्मपत्नी ला० बद्रीनाथ जी बी. ए. श्रीनगर	,,
बाई बदामो देवी पुत्री ला० गनेशीलाल चर्खीदादरी	,,
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	,,
श्रीमती भक्ताणीदेवी धर्मपत्नी भक्त नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	,,
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी ला० प्रभुदयाल जी ,,	५१)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१)
मुक्खी चराइमल बलीराम जी भटण्डा	२५)
राव गजराजसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० गुड़गावां	२५)
सेनागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट सिचनाबाद	

राव बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली २५)
ला० रामकुंवार जी सीनयर सब जज जालंधर २५)
सरदार भगतसिंह एडवोकेट जालंधर २५)
पी० एन० कौल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहोर २५)
चौ० सुन्दरलाल नन्दलाल रईसान कमालिया ज़ि० मिन्टगुमरी २५)
सूबेदार जगरामसिंह जी कांसली २५)

सहायक

चौ० हुकमसिंह जी निम्बरी ११)
बा० बैकुण्ठनाथ जी दिल्ली ११)
पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी ११)
चौ० शिवप्रसाद सेक्रेटरी अहीर स्कूल रेवाड़ी ५)
रामप्रसाद जी भाड़सा ५)
चौ० रामजीलाल जी कन्स्टेबल नांगलोई ५)
भक्त बनारसीदास जी दिल्ली ५)
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी । ५)
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ़ । ५)
चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)
श्रीमान पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहबाद बैंक देहली । ५)
ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेण्ट हजूरी, संगरूर । ५)
महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदासियान बल्लीमारान दिल्ली ५)
मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर ५)
राय बहादुर लेखनारायण सिंह जी बाढ़, पटना ५)
डाक्टर कंवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता ५)
राय साहब बांकेबिहारीलाल जी बी० ए० तहसीलदार चिड़ावा ५)
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी ५)
ला० रामचन्द्र जी वैद्य " ५)
राव घीसाराम जी गढ़ीबोलनी ५)
बा० शिवरामसिंह जी " ११)
जमादार दीपचन्द जी " ७)
चौ० इन्द्रसिंह जी सिरहौल ५)
ला० ओंकारमल जी कानपुर १०)
चौ० गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा परगना नारनौल ५)
चौ० मनोहरसिंह जी " पाल्हावास, रेवाड़ी ११)
चौ० दौलतराम जी पटवारी नाहरी, सूबा दिल्ली ११)
५)

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवत्‌गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य	॥=)
२. सारसंग्रह	,,	≡)
३. शब्दसंग्रह	,,	-)॥
४. भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।-)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	-)।
६. वेदोपनिषत्	,,	।-)
७. ज्ञानधर्मोपदेश	,,	-)॥।
८. भाषा कविका प्रकाश	,,	॥)
९. भक्ति योग संग्रह	,,	=)॥
१०. शब्द संग्रह गुटका	,,	।)
११. शब्द सदाचार संग्रह	,,	-)।

मिलने का पता :—

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

केवल टाइटिल पेज महारथी प्रेस, दिल्ली में छपा।